ओ३म्

वेदामृत

५.२

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्



लेखक :
स्वामी वेदानन्द तीर्थ

मूल्य एक रुपया

ओ३म्

हकीम वीरूमल आर्यप्रेमी
आर्यन फार्मेसी
नला बाजार अजमेर की
ओर से



वेदाऽमृत

वेद भक्तों के लिए
भाव पूर्ण
उपहार

प्रकाशक :
श्री मोहनलाल वैद्य
आर्यन फार्मेसी
नला बाजार, अजमेर

तेरी चीज तुझको अर्पित
तू ही कृपा कर
तेरे नाम का प्रचार हो।

मुद्रक :
श्री भगवानस्वरूप 'न्यायभूषण'
प्रबन्धकर्त्ता :
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर

प्राक्कथन

++卐++

ईश्वर की लीला अपरंपार है। लगभग ३० साल हुए, मैं हैदराबाद सिन्ध आर्यसमाज का मन्त्री था। एक पूजनीय संन्यासी स्वामी सेवकानन्दजी सिन्ध में आर्यसमाज का कार्य करते थे। उन्होंने ही क्यामाड़ी में आर्यसमाज का मन्दिर बनाया था। ईंटें, चूना अपने सिर पर उठाकर मन्दिर बनाया था। एक बार की बात है—श्री लाला योधराजजी, जनरल मैनेजर पञ्जाब नेशनल बैङ्क, पूजनीय महात्मा प्रभुआश्रितजी और मेरा भोजन स्वर्गीय प्रिंसिपल रामसहायजी के गृह पर था। हम सब मिलकर उनके बंगले पर गये तो देखा कि एक सीढ़ी पर स्वामी सेवकानन्दजी भोजन कर रहे थे। यह देख, प्रिंसिपल श्री रामसहायजी ने कहा "स्वामीजी अन्दर चलिये, मिलकर भोजन करेंगे" लेकिन स्वामीजी ने कहा "भाई रामसहाय! मुझे जब भूख लगी तो बिना बुलाये ही माताजी के पास आगया और बोला माताजी मुझे भूख लगी है, रोटी दो। माताजी ने प्रेम से मुझे भोजन खाने को दे दिया और मैं खा रहा हूं।" वो संन्यासी हैदराबाद सिन्ध में आये और १७ दिन बराबर हमारे साथ रहे। जाते वक्त वेदामृत की एक प्रति दे गये और कह गये, "बेटा! इसके प्रार्थना खण्ड का रोजाना स्वाध्याय करते रहना।" वो दिन और आज का दिन, मैं बराबर स्वाध्याय करता रहा हूं। सिन्ध में मेरी दो जगह एक कराची और दूसरी हैदराबाद में फार्मेसी थी और बाहर भी चला जाता था। स्वाध्याय की जो अन्य पुस्तकें थीं उनको तीन २ प्रति लेते थे।

वेदामृत की दूसरी कापी कहीं से भी नहीं मिली। आखिर प्रयत्न करने के पश्चात् दो सज्जनों ने दो प्रतियाँ मुझे दे दीं। जब यहां सन् १९५२ में गांधी भवन में हमारा यजुर्वेद महायज्ञ हुआ तो **पूजनीय श्री स्वामी वेदानन्दजी तीर्थ** भी आये थे। मैंने उनको विनय की कि वेदामृत छपना चाहिये। स्वामीजी ने कहा कि हकीमजी प्रथम तो वेदामृत इतना बड़ा छपना कठिन है, लेकिन बड़ी बात तो यह है कि वेदामृत की प्रति न मेरे पास है न कहीं मिलती है जो हम छाप सकें। ऊपर वाली बात मैंने स्वामीजी को बताई तो उन्होंने कहा वो प्रति तो मैंने ही स्वामी सेवकानन्दजी को भेंट की थी। अभी आपके पास है तो मुझे दे दीजिये। मेरे पास कभी न कभी छप जायेगी। मैंने प्रति दे दी। मन में अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि ईश्वर की करुणा तो देखो कि जो चीज जहाँ से चली थी, २२ वर्ष के पश्चात् वहीं पर पहुंच गई। उसके कुछ समयोपरान्त पूजनीय स्वामी वेदानन्दजी महाराज का स्वर्गवास हो गया। मैंने सोचा कि सम्पूर्ण पुस्तक को छपवाना अभी तो मेरी सामर्थ्य के बाहर है लेकिन इसका कुछ भाग तो छाप दूं। जो मैं रोज स्वाध्याय करता हूं उसे तो दूसरे ईश्वर भक्तों को भेंट कर दूं। विद्वान् तो मैं नहीं हूं इसलिये यह पुस्तक छापने का कार्य मैंने श्री पं० भगवानस्वरूपजी न्यायभूषण, प्रबन्धक वैदिक यन्त्रालय के हाथों में सौंप दिया और उनसे प्रार्थना की कि पंडितजी इस पुस्तक की छपाई इतनी सुन्दर हो कि जो भी सज्जन देखें गद् गद् मन से वाह २ करने लगें। पंडितजी ने भी यह बात स्वीकार कर ली। आज यह पुस्तक आपके पवित्र हाथों में है। मेरा इसमें कुछ भी

नहीं है। सब परमपिता परमात्मा की कृपा एवं माया है। मेरी तो श्रद्धा और भक्ति है। ईश्वर करे आपके मन में, आपके शरीर में, आपके हृदयों में भी प्रभु भक्ति की पवित्रता और श्रद्धा कूट कूट भरी रहे। मेरी प्रभु से यही प्रार्थना है कि मैं सदा पवित्र रहूं, श्रद्धा भक्ति प्रभु सदैव मुझे प्रदान करें और उनके साथ आप भाई बहिन भी सदा श्रद्धा एवं भक्ति से भरपूर रहें।

श्रावणी
श्रावण शुक्ला पूर्णिमा
संवत् २०१७ वि०
दिनाङ्क ७ अगस्त १९६०

आपका भाई
हकीम वीरूमल
आर्य प्रेमी



॥ ओ३म् ॥

प्रार्थना

प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये
अस्य कामं जनिधा इव ग्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात
पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥

ऋ. १०।२९।५॥

(जनिधा इव) जन्म देने वाली स्त्रियां जिस प्रकार अपने पुत्रों को प्रेरणा देती हैं, तथा (सूरः न) विद्वान् जिस प्रकार अपने शिष्यों को प्रेरणा देते हैं, उस प्रकार (पारं) आपत्ति के पार होने के लिये और (अर्थं) पुरुषार्थ करने के लिये उन लोगों को (प्रेरय) प्रेरणा करो कि (ये) जो लोग (अस्य कामं) इस ईश्वर की इच्छा के अनुसार (ग्मन्) चलते हैं अर्थात् आचरण करते हैं। हे (तुविजात नर इन्द्र) बलवान्, अग्रणी प्रभु ! (ये) जो लोग (अन्नैः) अन्नों के द्वारा लोगों का साहाय्य करते हैं, तथा जो (ते पूर्वीः गिरः) तेरा पूर्ण अथवा प्राचीन उपदेश वेद हरएक को (प्रति शिक्षन्ति) सिखाते हैं। उन को भी योग्य प्रेरणा करो।

(१) स्त्रियां अपने बालबच्चों को उत्तम संस्कार करके शुभ भावनायुक्त बनायें, (२) पिता और गुरुजन अपनी सुयोग्य शिक्षा से शिष्यों की उन्नति करें, (३) तथा विद्वान् नेताजन साधारण लोगों

को सुशिक्षा के प्रचार द्वारा उत्तम संस्कार संपन्न बनावें। इस प्रकार सुशिक्षा के प्रचार द्वारा जनता को उन्नत करके उत्तम पुरुषार्थों के द्वारा सब आपत्तियों के पार होकर उत्तम भोग तथा श्रेष्ठ आनन्द के भागी बनें।

इदं नमो वृषभाय स्वराजे
सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि ।
अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः
स्मत्सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम् ॥

ऋ. १।५१।१५॥

(वृषभाय) बलवान्, (स्वराजे) स्वकीय तेजयुक्त (सत्य शुष्माय) जिसका बल सच्चा है ऐसे (तवसे) अति महान् एक प्रभु के लिये (इदं नमः अवाचि) यह नमस्कार कहता हूं। हे (इन्द्र) प्रभो ! (अस्मिन् वृजने) इस दुःखमय संसार में (सर्व वीराः) हम सब वीर (सूरिभिः) ज्ञानियों के साथ (तव) तेरे (शर्मन् स्याम) सुखपूर्ण संरक्षण में रहें।

परमेश्वर सब से श्रेष्ठ, शक्तिमान्, तेजस्वी, और प्रभावयुक्त है, इसलिये उसको नमस्कार करते हैं। क्योंकि इस जीवनकलह में हम सब वीर उसी की सुखमयी रक्षा में रहकर विजय प्राप्त करेंगे।

यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो
धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः ।

इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि
संदधुर्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥

ऋ. १।१०१।६॥

(यः) जो (शूरेभिः) शूर वीरों से, (भीरुभिः) भीतिग्रस्त मनुष्यों से (धावद्भिः) हमला करने वालों से, (जिग्युभिः) विजयी वीरों से (हव्यः) प्रार्थना करने योग्य है, (यं) जिस (इन्द्रं) प्रभु के साथ सम्पूर्ण भुवन (अभिसंदधुः) संबन्धित हैं, उस (मरुत्वंतं) शक्ति से युक्त प्रभु की (सख्याय) मित्रता के लिये हम (हवामहे) प्रार्थना करते हैं।

ईश्वर सब का उपास्य है। शूर, भीरु तथा अन्य सब उसकी प्रार्थना करें क्योंकि सब जगत् उसके आधार से रहता है इसलिये वही सब का योग्य रक्षक है। जो उससे मित्रता करता है उसकी वह रक्षा करता है।

भद्रं नो अपि वातय
मनो दक्षमुत क्रतुम्।
अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो
मदे रणन् गावो न यवसे विवक्षसे ॥

ऋ. १०।२५।१॥

हे ईश्वर (नः) हम सब को (भद्रं मनः) कल्याण कारक मन (भद्रं दक्षं) कल्याणकारक बल (उत) और (भद्रं क्रतुं) कल्याणकारक कर्म (अपि वातय) प्राप्त कराओ। (अधः=अथ) पश्चात्

(ते सख्ये) तेरी मित्रता में और (अन्धस=अन्+धसः) प्राणशक्ति के (मदे) हर्ष में हम सब (वः) आपका (विरप्शिन्) विशेष प्रकार गायन करते रहें। (न गावः) जिस प्रकार गौवें (विवक्षसे यवसे) बड़े घास के खेत में आनन्द करती हैं। उस प्रकार हम आनन्द से रहें।

अपना मन शुभ संस्कारों से युक्त करना चाहिये। अपनी शक्ति शुभ प्रयत्नों में अर्पण करनी चाहिये और मन तथा बल से शुभ पुरुषार्थ करने चाहियें। इन तीन केन्द्रों की पवित्रता होने से मनुष्य शुद्ध पवित्र और श्रेष्ठ होता है। जो मनुष्य इस प्रकार पवित्र होता है उस को इस सम्पूर्ण विश्वमें दुःख और कष्ट देने वाला कोई नहीं होता। क्योंकि परमात्मा का आनन्द उस को सर्वत्र प्रत्यक्ष होता है।

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये
सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं
राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥

ऋ. १।५७।१॥

(महिष्ठायं) अत्यंत दानशूर (बृहते) बड़े (बृहद्रये) अनंत धनवाले (सत्यशुष्माय) सत्य बलसे युक्त (तवसे) महाशक्तिशाली प्रभु के लिये (मतिंप्रभरे) मैं अपनी बुद्धि अर्पण करता हूं। (प्रवणे अपां इव) निम्न प्रदेशमें जैसा जल जाता है उस प्रकार (यस्य) जिसका (दुर्धरं राधः) अप्रतिबंधित दान (विश्वायु) सब मनुष्यों को (शवसे) बलवृद्धि के लिये (अपावृतम्) खुला हुआ है।

परमेश्वर अत्यन्त दानशूर है क्योंकि उनसे यह सब जगत् हमें दिया है वही सबसे धनी और बलिष्ठ हैं। उसके उपकार हमपर असंख्यात आरहे हैं। हमारे लिये उसका खजाना खुला है। इसलिये हम अपनी बुद्धि उसके पास लगाते हैं।

इमे त्वा इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत
ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः
सघत्क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः॥

ऋ. १।५७।४॥

हे (पुरुष्टुत) बहुतों द्वारा प्रशंसित! हे (प्रभूवसो इन्द्र) बहु धन से युक्त प्रभो! (इमे वयं) ये हम (त्वा आरभ्य) तेरा आश्रय करके (चरामसि) चलते हैं। अथवा (त्वा-चरामसि) प्रत्येक कार्य्य में तेरा नाम लेकर कार्य्य का आरम्भ करते हैं। (त्वात् अन्यः) तेरे भिन्न कोई भी (गिर्वणः गिरः) उपासक के शब्द (न हि सघत्) नहीं सुनता है। इसलिये (क्षोणीः इव) पृथिवीके समान हमारे (तद् वचः) भाषण (प्रति हर्य) श्रवण कर।

परमेश्वर की सब प्रशंसा करते हैं और सब लोग उसीकी उपासना करते हैं। क्योंकि उससे भिन्न कोई भी भक्त की प्रार्थना सुनता नहीं, इस कारण सब लोग उसी को अपना केन्द्र मानकर अपना मनोगत भाव उसी को कहें। हृदय से की हुई प्रार्थना को प्रभु अवश्य सुनता है।

देवं सवितः प्रसुव यज्ञं
प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः
पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥

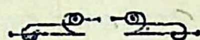
य. ३०।१॥

हे (सवितः देव) उत्पादक ईश्वर ! (भगाय) ऐश्वर्य्यके लिये (यज्ञं) सत्कर्मकी (प्रसुव) प्रेरणा कर तथा (यज्ञ-पतिं) यज्ञ के पालकको (प्रसुव) प्रेरणा कर। (दिव्यः) दैवी गुणों से युक्त (गं-धर्वः) वाणी का पोषक और (केत-पूः) ज्ञानसे पवित्र करनेवाला (नः) हम सब के (केतं) ज्ञानको (पुनातु) पवित्र करे। तथा (वाचस्पतिः) वाणीका स्वामी (नः वाचं) हम सबकी वाणी को (स्वदतु-स्वादयतु) अर्थात् मीठी बनावे।

परमेश्वर सबको सत्कर्म करने की तथा सत्कर्म का संरक्षण करने की बुद्धि देवे। अपने उत्तम ज्ञानसे पवित्रता करनेवाला ज्ञानी हम सबके ज्ञानकी पवित्रता करे। तथा उत्तम वक्ता हम सबकी वाणीको मधुर बनावे। जिससे हम सब की उन्नति हो सके।



मेधा बुद्धिकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना



सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सनिं मेधामयासिषᳪं स्वाहा ॥

य. ३२।१३॥

(इन्द्रस्य प्रियं) जीवात्माके प्रियमित्र, (काम्यं) कमनीय, प्राप्तव्य और (अद्भुतं) विलक्षण (सदसः पतिं) विश्व के स्वामी के पास (सनिं) योग्य उपभोग की और (मेधां) उत्तम बुद्धि की (अयासिषम्) याचना करता हूं। (स्वाऽऽहा) स्वार्थ त्याग करता हूं।

सबकों प्राप्त करने योग्य, अद्भुत और जीवात्माके प्रियमित्र जगदीश्वर के पास हम सबकी प्रार्थना है कि, हम सबको योग्य उपभोग के पदार्थ और उत्तम बुद्धि देवे। इसके लिये मैं स्वार्थत्याग करता हूं।

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाग्ने
मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥

य. ३२।१४॥

(देवगणाः) विद्वानों के समूह और (पितरः) रक्षकों के समूह (यां मेधां) जिस उत्तम बुद्धि का (उपासते) सेवन करते हैं। हे (अग्ने) तेजस्वी ईश्वर ! (तया मेधया) उस बुद्धि से (अद्य मां)

आज मुझे (मेधाविनं) बुद्धिमान् (कुरु) करो (स्वाऽऽहा) मैं स्वार्थत्याग करता हूं।

हे ईश्वर! ज्ञानी और रक्षक जिस प्रकार की बुद्धि चाहते हैं। उस प्रकार की बुद्धि से मुझे युक्त करो। मैं इस सिद्धि के लिये स्वार्थत्याग करता हूं।

मेधां मे वरुणो ददातु
मेधामग्निः प्रजापतिः।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां
धाता ददातु मे स्वाहा॥

य. ३२।१५॥

(वरुणः) श्रेष्ठ ईश्वर (मे मेधां) मुझे उत्तम बुद्धि (ददातु) देवे। (प्रजापतिः अग्निः) प्रजा पालक तेजस्वी ईश्वर (मेधां ददातु) मुझे उत्तम बुद्धि देवे। (च च) और (इन्द्रः वायुः) परम ऐश्वर्यवान् और गति देने वाला ईश्वर (मे मेधां) मुझे उत्तम बुद्धि (ददातु) प्रदान करे। (धाता मेधां) सकल संसार का धारण करने वाला प्रभु मुझे धारणावती बुद्धि देवे। (स्वाऽऽहा) अपने सर्वस्व का अर्पण करता हूं।

सबसे श्रेष्ठ, प्रजापालक, तेजस्वी ऐश्वर्यवान्, प्रेरक और सबका आधार ईश्वर मुझे उत्तम बुद्धि प्रदान करे। मैं आत्मसर्वस्व का अर्पण करता हूं।

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं
चोभे श्रियमश्नुताम्।

मयि देवा दधतु
श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥

य. ३२।१३॥

(मे इदं ब्रह्म) मेरा यह ज्ञानतेज (च मे इदं क्षत्रं) और मेरा यह क्षात्रतेज (च उभे) वे दोनों (श्रियं) शोभा को (अश्नुतां) प्राप्त हो। (देवाः) विद्वान् अथवा दिव्यगुण (मयि) मुझ में (उत्तमां श्रियं) उत्तम शोभा को (दधतु) धारण करें। (तस्यै ते) उस तेरे लिये (स्वाऽऽहा) स्वार्थत्याग करता हूं।

ब्राह्मण और क्षत्रिय, ज्ञान और शौर्य मिलकर उत्तम तेजस्विता की प्राप्ति करें। सब उत्तम विद्वान् और सब उत्तम सद्गुण मुझ में तेज की स्थापना करें। उस तेजकी प्राप्ति के लिये मैं स्वार्थत्याग करूं।

आत्मिक शक्ति की प्राप्ति



ओजऽस्योजो मे दाः स्वाहा ॥१॥
सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा ॥२॥
बलमसि बलं मे दाः स्वाहा ॥३॥
आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा ॥४॥

श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः स्वाहा ॥५॥
चक्षुरसि चक्षुर्मे दाः स्वाहा ॥६॥
परिपाणमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा ॥७॥

अ. २।१७॥

हे (परमात्मन्! तू (ओजः) शारीरिक सामर्थ्य, (सहः) पराक्रम, (बलं), बल (आयुः) आयु, (श्रोत्रं) श्रवणशक्ति और (परिपाणं) स्वसंरक्षण, आदि शक्तियोंसे युक्त है, इसलिये मुझे उक्त शक्तियां दो। मैं (स्व-आ-हा) स्वकीय शक्तियों को सबकी भलाई के लिये समर्पण करता हूं।

उक्त शक्तियां पूर्णरूप से परमात्मा में हैं, और अंशरूप से आत्मा में हैं, इन शक्तियों का विकास करने से मनुष्य का स्वत्व सुरक्षित होता है। इस मंत्र में श्रोत्र और चक्षु शब्द अन्य इन्द्रिय शक्तियों का उपलक्षण हैं। संपूर्ण अन्य शक्तियां यहां अपेक्षित हैं।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि।
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि॥
बलमसि बलं मयि धेहि।
ओजोऽस्योजो मयि धेहि॥
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि।
सहोऽसि सहो मयि धेहि॥

य. १९।९॥

हे परमात्मन् ! तू तेजस्वी है, मुझमें तेज स्थापन कर, तू वीर्य-वान् है मुझमें वीर्य स्थापन कर, तू बलवान् है, मुझमें बल स्थापन कर, तू समर्थ है मुझमें सामर्थ्य स्थापन कर, तू उत्साहमय है मुझमें उत्साह स्थापन कर, तू सहनशक्ति से युक्त है मुझमें श्रम सहन करने की शक्ति स्थापित कर। यह वैदिक प्रार्थना है।

वाचस्पति सूक्त

ये त्रिषप्ताः परियन्ति
विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां
तन्वो अद्य दधातु मे ॥१॥

अ. १।१॥

(ये) जो (त्रि-सप्ताः) तीन गुणा सात तत्व (विश्वा रूपाणि) संपूर्ण रूपों को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (परियन्ति) सब ओर फैल रहे हैं, (तेषां तन्वः) उनके शरीरों के (बला) बल (अद्य) आज (मे) मेरे लिये (वाचः पतिः) वाणी का स्वामी (दधातु) दान करे।

सब जगत् के पदार्थ "तीन गुणा सात" अर्थात् इक्कीस तत्वों से बने हैं। पृथ्वी, आप तेज, वायु, आकाश, तन्मात्र, अहंकार इन सात पदार्थों में सत्वरज-तम के कारण, प्रत्येक के तीन तीन भेद होकर

इक्कीस पदार्थ होते हैं। हरएक पदार्थ में न्यूनाधिक मिश्रण से जगत् के संपूर्ण पदार्थ बनते हैं। हरएक पदार्थ में न्यूनाधिक परिणाम से ये इक्कीस पदार्थ हैं। हमारे आत्मा के लिये यह नरदेह प्राप्त हुआ है, इसमें भी ये इक्कीस तत्व न्यूनाधिक परिमाण से हैं। इनके बलसे ही शरीर में बल की स्थिति होती है। इस लिये मंत्र में कहा है, कि इन इक्कीस तत्वों के अन्दर जो बल है उन बलों का निवास आज ही मेरे शरीर में हो। अर्थात् बल बढ़ाने का पुरुषार्थ कोई मनुष्य कल पर न छोड़े। आज ही उसका अनुष्ठान करे। बल बढ़ाने का अनुष्ठान करने वाला विचार करे, कि अपने अन्दर किस तत्त्व की कमज़ोरी है। इसका ठीक विचार होने पर उस बात की वृद्धि करके उस न्यूनता की पूर्ति करे। इस प्रकार अपने अन्दर संपूर्ण बलों की परिपूर्णता करे और किसी प्रकार की न्यूनता न रखे।

"वाणीका पति" आत्मा है। क्यों कि वही वाणी का प्रेरक है। यही पूर्वोक्त बल अपनी इच्छाशक्ति से अपने शरीर में रखे। आत्मा की प्रबल इच्छाशक्ति से ही बल की वृद्धि संभवनीय है।

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह।
वसोष्पते निरमय
मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥२॥

अ. १।१॥

हे (वाचः पते) वाणी के स्वामी! (देवेन मनसा सह) दिव्य शक्ति से परिपूर्ण मन के साथ (पुनः एहि) वारंवार आ। हे (वसोः पते) सुख के स्वामी! निरमय) निरन्तर आनंद दो और (मयि) मेरा (श्रुतं) ज्ञान (मयि एव अस्तु) मेरे अन्दर रहे।

मन दैवी शक्ति से युक्त होता है और कभी कभी राक्षसी शक्ति से अथवा आसुरी शक्ति से भी युक्त बनता है। इसलिये मन को आसुरी राक्षसी वृत्तियों से दूर कर दैवी भावनाओं से ही परिपूर्ण बनाना आवश्यक है। क्योंकि दैवी भावनाओं से युक्त मन उन्नति का साधक है और हीनवृत्ति वाला मन बाधक होता है। वाणी का प्रेरक आत्मा पुनः पुनः मन के अन्दर दैवी भावना की स्थापना करे, क्योंकि एक बार दैवी भावना से स्फुरित हुआ मन थोड़े काल के पश्चात् राक्षसी विचार से युक्त बन सकता है, इसलिये जागरूकता के साथ मन में वारंवार दैवी भाव स्थापित करने का यत्न करना चाहिए।

"वसु" का अर्थ है "मंगल-शुभ, श्रेय, कल्याण, सुख, धन" इसका स्वामी आत्मा है। इस लिये वह जहां आत्मिक बल रखता है वहां शुभ मंगल बना देता है। दिव्य भावनाओं से परिशुद्ध बना हुआ मन आत्मिक बल से युक्त होने पर आनन्द रस से परिपूर्ण बनता है।

यह सब बनाने के लिये ज्ञान की आवश्यकता है। ज्ञान विना पूर्वोक्त सिद्धि नहीं होगी। इसलिये अपने अन्दर ज्ञान की वृद्धि करने का यत्न करना हरएक को अत्यावश्यक है। (१) ज्ञान की वृद्धि होने से मन दैवी भावनाओं से शुद्ध बनता है, (२) शुद्ध मन में आत्मिक बल बसता है, (२) और जहां दिव्य मन और आत्मिक बल है, वहां अनन्द रहने में शंका ही क्या हो सकती है।

इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नी इव ज्यया।
वाचस्पति र्नियच्छतु
मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥३॥

अ. १।१॥

(ज्यया आर्त्नी इव) डोरी से धनुष्य के दोनों नोक जैसे बांधे जाते हैं, उस प्रकार (इह एव) यहां ही (उभे), दोनों को (अभि वितनु) हमारे चारों ओर फैलाओ। (वाचस्पतिः) वाणि का पति (नियच्छतु) नियम में रखे। (मयि श्रुतम्) मेरा ज्ञान (मयि एव अस्तु) मुझ में रहे।

जैसे डोरी से धनुष्य के दोनों नोक बांधे जाते हैं, इसी प्रकार दैवी शक्ति से परिपूर्ण अपने मन से ज्ञान और कर्म इन दोनों को बांधकर रखना चाहिये। वाणी का पति आत्मा इस नियम को मन में रखे और उनके द्वारा अपनी सब प्रकार की उन्नति सिद्ध करे। इन सब की सिद्धि के लिये अपने अन्दर ज्ञान की वृद्धि करना चाहिये।

उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान्
वाचस्पतिर्ह्वयताम्।
सं श्रुतेन गमेमहि मा
श्रुतेन वि राधिषि ॥४॥

अ. १।१॥

(वाचः पतिः) वाणी का पति आत्मा (उपहूतः) हमने बुलाया है, वह (वाचस्पतिः) वाणी का पति (अस्मान्) हमको (उप ह्वयताम्) बुलावे। (श्रुतेन) ज्ञान से (संगमेमहि) हम संयुक्त रहें, (श्रुतेन) ज्ञान से (मा विराधिषि) मैं अलग न होऊं।

आत्मा से बल की प्रार्थना करने पर वह आत्मा बल देता है। इस प्रकार आत्मिक बल की प्राप्ति करने के लिये हम सबको उचित है, कि हम अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करें और कदापि विरोध न करें।

अनपराधी होकर हम सेवा करें

अरं दासो न मीळ्हुषे
कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः ।
अचेतयदचितो देवो अर्यो
गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥

ऋ. ७।८६।७॥

(अरं दासः न) जैसे दास अपने स्वामी की सेवा निष्कपट भाव से करता है, तद्वत् (मीढुषे) निखिल कामनाओं को वर्षानेवाले (भूर्णये) जगत् के पोषक (देवाय) देव की सेवा (अहम्) मैं (अनागाः) अपराधरहित होकर (अरं कराणि) सदैव करता हूं। (अर्यः) सर्व स्वामी (देवः) वह परमदेव ईश्वर (अचितः) हम अज्ञानी जनों का (अचेतयत्) चेताया करे। समय समय पर वह परमेश्वर हम अज्ञानियों को प्रेरणा किया करे। (कवितरः) वह सर्वज्ञतम देव (गृत्सम्) भक्त जनोंको (राये) शुभ धन की ओर (जुनाति) ले जाय।

अनु० – दासवत् मैं अपराधरहित उसको सर्वदैव सेवा करूं। जो देव समस्त कामनाओं का पूरक और जगत् का भरण कर्ता है, वही सर्वस्वामी देव अज्ञानी को चेतावे और वह सर्वज्ञ ईश्वर स्तोता को शुभ धन की ओर ले जाय।

इष्टदर्शनार्थ औत्सुक्य

उत स्वया तन्वा३ सं वंदे
तत्कदा न्व१न्तर्वरुणे भुवानि ।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत
कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् ॥

ऋ. ७।८६।२॥

भक्तजन परम इष्ट को शीघ्र देखने की इच्छा से तर्कवितर्क करते हैं। (यत) मुझको सन्देह हो रहा है कि क्या मैं (स्वया तन्वा) स्वकीय शरीर के साथ (संवदे) सम्वाद कर रहा हूं, यह मुझको विदित नहीं होता, (कदानु) कब (वरुण) अपने इष्ट देव में अन्तर्भूत होऊंगा अर्थात् कब में परमात्मा के ध्यान में निमग्न हो जाऊं। यह वारंवार मन में विचारता हूं पर होता नहीं। और भी (किम्) क्या (अहृणानः) क्रोध न करते हुए किन्तु मेरी प्रार्थना से प्रसन्न होकर वह देव (मे हव्यम्) मेरी प्रार्थना और आहुति को (जुषेत) ग्रहण करेंगे ? (कदा) कब (सुमनाः) निश्चिन्तमनस्क होकर मैं (मृडीकम्) अपने सुखकारी देव को (अभिख्यम्) देखूंगा।

अनु०—मैं अपने शरीर के साथ संवाद कर रहा हूं। मैं कब वरुण देव में निमग्न होऊंगा। क्या वरुण देव क्रोधरहित होकर मेरी प्रार्थना सुनेंगे, कब सुमनस्क होकर मैं अपने सुखकारी इष्ट को देखूंगा।

परमोदारता

प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते
रयिमिव पृष्ठं प्रभवंतमायते ।
असिन्वन्दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं
यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥

ऋ. २।१३।४॥

हे भगवन् ! आकी कृपा से आपके गृहमेधी समस्त भक्तजन (पुष्टि) आपके दिये हुए पोषक धन को (प्रजाभ्यः) प्रजाओं में (वि भजन्तः) परस्पर विभाग करते हुए (आसते) अपने अपने गृहमें सुख पूर्वक निवास करते हैं। यहां दृष्टान्त देते हैं (आयते) गृह में आये अतिथि को (पृष्ठम्) धारक (प्रभवंतम्) और बहुभरण समर्थ (रयिमिव) धन को जैसे विभाग करके देते हैं तद्वत् सकल प्रजागण परस्पर अपने अपने धन को विभाग कर आनन्द से निवास करते हैं यह आपकी महती कृपा है। हे भगवन् ! (असिन्वन्) प्रत्येक कर्मकारी पुत्र (पितु) अपने अपने पिता के गृहमें (दंष्ट्रैः) दांतों से (भोजनं अत्ति) भोजन करते हैं (यः) जिस अपने (ता) उन सुखकारी कर्मों को (अकृणोः) विधान किया है (सः) वह आप (प्रथमन्) प्रथम (उक्थ्यः असि) पूज्य हैं।

आशय—इस मंत्र से भगवान् शिक्षा देते हैं कि प्रत्येक ग्राम और नगरादि में प्रत्येक बुद्धिमान् मनुष्य को उचित है कि वह जहां तक हो गृह गृह में जाकर कुशलादि वार्ता पूछे और यदि किसी घर में अन्न की

त्रुटि हो तो उसको पूर्ण करे जिससे कोई भूखा न रह जाय। और प्रत्येक मनुष्य को यह भी उचित है कि वह अपने परिश्रम से उपार्जित धन का भोग कर और पैतृक धन को अच्छी तरह से अपने काम में लावे उस धन को व्यर्थ कार्य में न खर्च करे।

ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने
रातिमुपसृजन्ति सूरयः।
अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि
वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥

ऋ. २।१।१६॥

(ये सूरयः) जो मेधावीगण (स्तोतृभ्यः) स्तुतिपाठकों को (अश्वपेशसं) अश्वयुक्त (गो अग्राम्) गौ प्रभृति धन संयुक्त (रातिम्) दान (उपसृजन्ति) देते हैं (तान् च) उनको (अस्मान् च) और हमको (वस्यः) श्रेष्ठ स्थान की ओर (आ प्र हि नेषि) ले चलो। आपकी कृपा से हम (सुवीराः) सुवीर हों। और सुवीर पुत्रपौत्रादि से युक्त होकर (विदथे) यज्ञादि सकल शुभ कर्मों में (बृहद्वदेम) बृहत्स्तोत्र कहा करें।

अनु०—हे अग्ने! जो मेधावीगण स्तोतृगण को गौ और अश्वप्रभृति धन प्रदान करते हैं। उनको और हमको श्रेष्ठस्थान में ले चलिये। हम सुवीर हों और सुवीर पुत्रपौत्रादि से युक्त होकर यज्ञशाला में बृहत्स्तोत्र कहें।

उभयासो जातवेदः स्याम ते
स्तोतारो अग्ने सूरयश्च शर्मणि ।
वस्वो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः
प्रजावतः स्वपत्यस्य शग्धि नः ॥

ऋ. ३।२ १२॥

(जातवेदः) हे सर्वज्ञ ! हे सर्वधनसम्पन्न ! (अग्ने) हे महा तेजस्विन्देव ! (स्तोतारः) तुम्हारे स्तोतृगण (सूरयः च) और हमारे विवेकी विद्वद्गण (उभयासः) हम दोनों (उभयासः) हम दोनों (ते शर्मणि) तुम्हारे मंगल कार्यमें विद्यमान रहा करें । आप (नः) हमको (वस्वः रायः) वसने योग्य धन, (पुरुश्चन्द्रस्य) अतिशय आह्लादक अथवा बहु हिरण्योपेत (भूयसः) बहुत (प्रजावतः) भृत्यादियुक्त (स्वपत्यस्य) शोभन पुत्रयुक्त धन (शग्धि) दीजिये ।

अनु०—हे सर्वभूतज्ञ अग्ने ! तुम्हारे स्तोता और मेधावी हम दोनों आपके कल्याण में सदा वास करें । आप हमको निवास योग्य अतिशय आह्लादप्रद, प्रभूत भृत्य और पुत्रादिविशिष्ट धन प्रदान कीजिये ।

इन्द्रियों की चञ्चलता

वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वी३दं
ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।

वि मे मनश्चरति दूर आधीः किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये ।

ऋ. ६।९।६।।

(मे कर्णा वि पतयतः) मेरे दोनों कान इधर उधर दूर दूर गिर रहे हैं । (चक्षुः वि) मेरे नयन भी इधर उधर दौड़ रहे हैं (हृदय यद् इदम् ज्योतिः) हृदय में स्थापित जो यह ज्ञानरूप ज्योति है वह भी (विपतयति) दूर भाग रही है । (दूरे आधीः मे मनः वि चरति-) अति दूरस्थ विषयमें ध्यान लगा कर मेरा यह मन भी दूर दूर विचरण कर रहा है । ऐसी अवस्थामें हे प्रभो ! आपसे (किम् स्वित् वक्ष्यामि) क्या मैं कहूं और (किम्+उ+नु मनिष्ये) क्या मनन करूं ।

आशय—प्रत्येक मनुष्यका नित्य यह अनुभव है कि कर्ण, चक्षु, मन आदि इन्द्रिय किसी कार्यमें स्थिर नहीं रहते । किंचिन्मात्र ही मौका मिलने पर झटसे इधर उधर भागने लगते हैं । ऐसी अनवस्थित दशा में मनुष्य सूक्ष्म कार्य कदापि नहीं कर सकता । अतः यह प्रार्थना है कि हे परमात्मदेव मेरे कर्ण, नयन, हृदयस्थ ज्ञान और यह मन सब ही चारों तरफ भाग रहे हैं । मैं कैसे आपके गुण गाऊं । कैसे मनन करूं । हे भगवन् ! आशीर्वाद करो जिससे मेरे सब इन्द्रिय समाहित हों और उनके द्वारा आपकी परम विभूतियां देखूं ।



हमारे कर्म ईश्वर के अर्पण हों

मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे।
त्वे अपि क्रतुर्मम ॥

ऋ. ७।३१।५॥

हे सर्वद्रष्टा परमात्मन्! जिस हेतु अपि (अर्यः) सबके शासक स्वामी हैं इस हेतु जो (निदे) निन्दक हैं (वक्तवे च) जो पुरुष वाक्यों के प्रवक्ता हैं और जो (अराव्णे) धनदान, विद्यादान, अन्नदान इत्यादि दानोंसे रहित उपकारशून्य, कृतघ्न और अपकारी हैं ऐसे ऐसे पुरुषों के अधीन (नः) हम उपासकों को (मा रन्धीः) मत कीजियेगा। हे भगवन्! (अपि) और (मम क्रतुः) मेरे निखिल यागादि शुभ कर्म (त्वे) केवल आपके निमित्त ही हुआ करें अर्थात् हे स्वामिन् इन्द्र! जो पुरुष वाक्य बोलते हैं जो निन्दा करते हैं और जो दान नहीं देते हैं उनके वशीभूत हमको न कीजियेगा। हे भगवन्! हमारे सकल मंगल कर्म आपकी कामना की पूर्तिके लिये ही हों आपकी ही आज्ञाएं पूर्ण हों।

हम मतिहीन न हों

मा नो अग्नेऽमतये
मावीरतायै रीरधः।

मागोतायै सहसस्पुत्र मा
निदेऽप द्वेषांस्या कृधि ॥

ऋ. ३।१६।५॥

(अग्ने) हे तेजोमय देव ! (सहसः पुत्र) हे सूर्यादि निखिल तेजोरक्षक जगत्विधायक भक्तजन पवित्रकारक भगवन् ! (अमतये) शत्रुभूत मतिहीनता के अधीन (मा रीरधः) हम को मत कर (अगोतायै) गवादि पशु सम्पत्ति विहीनता की ओर (मा) हम को न ले जाइए (निदे) निन्दक पुरुषों के वशीभूत (मा) हम को न कीजिये (द्वेषांसि) हमारे प्रति सकल अपराध निमित्तक द्वेषोंको (अपा कृधि) निवारण कीजिये अर्थात् मतिहीनता, अवीरता, गवादि पशुहीनता इत्यादि हीनताएं हमें प्राप्त न हों । निन्दक पुरुषों से हम दूर हों और हे भगवन् ! यदि हमसे कोई अपराध आपके निकट अज्ञान और भ्रमवश हो गया हो तो उस पर आप ध्यान देकर उस से हमारा मुख मोड़ दीजिये ।

आशय—मतिहीनता, अवीरता और गवादि पशुहीनता इत्यादि महापाप हैं । इसलिये यदि हम मनुष्यता को सफल करना चाहें तो हम बुद्धिमान् बनें । सदैव वीर होवें और पश्वादि धन संग्रह करें । हम जगत् में निन्दक, धूर्त, वञ्चक, पिशुन और अपकारी एवंविध न होवें और सदैव अपने पापों और अपराधों को देखते रहें । उन को छोड़ने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञा करें । तब ही ईश्वर के आशीर्वाद हम पर विराजमान होंगे और तब ही हम स्वयं सुखी होकर दूसरों को सुख पहुंचानेमें समर्थ भी होंगे ।

"हम स्वयं वीर हों और सुवीर पुत्र पौत्रादिकों से युक्त हों। यज्ञशालामें बैठकर उस परमात्मा का बृहत् यशोगान और कीर्तन सदैव किया करें।

इस वाक्य के सम्बन्ध में दो चार मन्त्र उद्धृत किये जाते हैं।

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे
दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो
नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥

ऋ. २।११।२१॥

(इन्द्र) हे सर्वद्रष्टा परमात्मन्! (ते) आपकी (दक्षिणा) जो दक्षिणा अपने स्तुतिपाठकों को देने योग्य (मघोनी) बहु धनधान्य सहित विद्यमान है वह (जरित्रे) स्तुतिपाठक के लिये सम्पादन कीजिये (सा) वैसी दक्षिणा (स्तोतृभ्यः) स्तुतिपाठक लोगोंको (शिक्ष) दीजिये किञ्च आप (भगः) परम भजनीय हैं (नः) हम लोगों की कामनाओं को (मा धक्) अपूर्ण मत करें। हे भगवन्! आपकी कृपासे (सुवीराः) हम लोग अच्छे वीर होवें और सुवीर पुत्रपौत्रादिक से युक्त होकर (विदथे) इस पवित्र यज्ञशाला में (बृहत्) तुम्हारे परम महान् यशोगान (वदेम) किया करें तुम्हारे उद्देश से ही हमारे सब शुभ कर्म हुआ करें।

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्वाजं
दर्दर्षि स किलासि सत्य।

वयं ते इन्द्र विश्वह प्रियासः
सुवीरासो विदथमा वदेम ॥

ऋ. २।१२।१५॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! आप (दुध्रः) अत्यन्त अविज्ञेय हैं, तथापि (यः) जो आप (सुन्वते) शुभ कर्म में आसक्त और (पचते) अकिंचन पुरुषों को पका कर देने वाले के लिये (वाजम्) बहुत से अन्न और बल को (आ ददर्षि) सदैव दिया करते हैं (सः किल) वह आप (सत्यः असि) सत्यस्वरूप हैं। हे इन्द्र ! (ते प्रियासः) तुम्हारे प्रिय हम होवें। (सुवीरासः) और तुम्हारी कृपा से हम अच्छे वीर हों और सुवीर पुत्रपौत्रादिकों से युक्त हों (वयं) हम उपासक गण (विश्वह) सब दिन (विदथम्) पवित्र यज्ञीय स्तोत्र (आवदेम) बोला करें।

अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः
समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु
द्यून् बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥

ऋ. २।१३।१३॥

(वसो) हे सर्व वासप्रद ! (इन्द्र) हे परमैश्वर्यशाली परमात्मन् ! (अस्मभ्यम्) हम उपासकों को (तत् राधः) वह धन (दानाय) दान और भोग के लिये (समर्थयस्व) दीजिये (यत्) जो धन (अनु द्यून) प्रतिदिन (श्रवस्याः) भोग के लिये आप

दिया करते हैं (ते) आप का धन (बहु) बहुत (वसव्यम्) वास योग्य (चित्रम्) नानाप्रकार का है और आप की कृपा से (सुवीराः) हम सुवीर हों और सुवीर पुत्रपौत्रादि से युक्त हों (विदथे) पवित्र यज्ञशाला में (बृहत्) बृहत्स्तोत्रादिक और आपका गान (वदेम) किया करें।

पश्चात्ताप

पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षूपो
एमि चिकितुषो विपृच्छम्।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरयं
ह तुभ्यं वरुणो हृणीते।

ऋ. ७।८६।३॥

(वरुण) हे हृदयंगम अन्तर्यामिन् देव ! (तत् एनः) उस अपराध को (पृच्छे) आप से पूछता हूं जिस से आप मुझ से असन्तुष्ट हो रहे हैं। (दिदृक्षु) मैं आप का दर्शन चाहता हूं। पाप के कारण आप का दर्शन मुझ को नहीं मिलता (विपृच्छम्) अनेक प्रकार से प्रश्न करने को (चिकितुषः) विज्ञानी भक्तों के (उपो एमि) निकट जाता हूं। (कवयः चित्) वे सब महाज्ञानी हैं वे (मे) मुझ से (समानं इत्) समान ही (आहुः) कहते हैं अर्थात् उन सबके कथन में कोई विभेद नहीं होता। वे यह कहते हैं

(अयं ह वरुणः) यह वरुणदेव ही (तुभ्यं ह) तेरे ऊपर (हृणीत) क्रुद्ध है। तेरे अपने इष्टदेव ही तुमसे बिगड़े हुए हैं उनको ही प्रसन्न कर। हे देव! मैं नहीं जानता कि मैंने कौनसा पाप किया कि जिससे आप मुझसे असन्तुष्ट हैं। आप से ही दर्शनाभिलाषी होकर मैं पूछता हूं।

हमको ज्योति मिले

इन्द्र क्रतुं न आ भर
पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत
यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥

ऋ. ७।३२।२६ ॥

(इन्द्र) हे सर्वद्रष्टः ईश्वर! (नः) हम उपासकों को (क्रतुम्) शुभ कर्म की, प्रज्ञा की तथा उद्योग की ओर (आ भर) ले चल। (यथा) जैसे (पिता) शिक्षक और शुभेच्छु पालक पिता (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के लिये नाना उद्योग रचता और उनको कल्याण मार्ग की ओर ले जाता है। तद्वत् (पुरुहूत) हे बहुपूज्य! हे बहुतों से आहूत ईश्वर! (नः शिक्ष) हम को अपना अभिप्रेत वस्तु दीजिये और देखिये आपकी कृपा से (अस्मिन् यामनि) इस जीवन यात्रा में अथवा इस जीवनयज्ञ में (जीवाः) हम जीवगण अथवा सुख से जीते हुए हम (ज्योतिः अशीमहि) आपकी कल्याणी ज्योति प्रतिदिन प्राप्त करें।

हम सब से उत्तम उपासक हों

प्र यद्वंदिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः ।
अपं न शोशुचदघम् ॥

ऋ. १।६७।३ ॥

हे भगवन् ! आपकी कृपा से (एषाम्) इन मनुष्यों के मध्य में (यद्) जिस प्रकार और जिन उपायों से (प्र भंदिष्ठः) अच्छा उपासक और आप की आज्ञाओं का अनुगामी होऊं (च) और (अस्माकासः) हमारे (सूरयः) विद्वान् पुत्रपौत्रादिक तथा बन्धुबान्धव सब ही (प्र) विशेषरूप से आपके उपासक हों वैसा आशीर्वाद दीजिये । आपकी कृपा से (नः अघं अप शोशुचत्) हमारा सब पाप विनष्ट हो ।

हम उस के होवें

ते स्याम देव वरुण
ते मित्र सूरिभिः सह ।
इषं स्वश्च धीमहि ।

ऋ. ७।६६।६ ॥

(वरुणदेव) हे अतिशय स्वीकरणीय देव ! (ते स्याम) हम आपके ही होवें । हम आप के ही भक्त पूजक, स्तुतिगायक और

मानने हारे होवें (मित्र) हे सर्वमित्र ! केवल हम ही नहीं किन्तु (सूरिभिः सह) विद्वानों और अन्यान्य बान्धवों के साथ हम आप के होवें। जिस से आपकी कृपा द्वारा (इषम्) अभिलषित धन (स्वः च) ज्ञान और मोक्षानन्द (धीमहि) प्राप्त करें।

ईश्वर को मत त्यागें



महे चन त्वामद्रिवः
परा शुल्काय देयाम्।
न सहस्राय नायुताय
वज्रिवो न शताय शतामघ

ऋ. ८।१।५॥

(अद्रिवः) हे अद्रिवन् ! हे विश्वधारक (वज्रिवः) हे वज्रिवन् ! वज्रधारिन् ! हे परमज्ञानिन् देव ! (महे च शुल्काय) महान् मूल्य के लिये भी (त्वाम् न परो देयाम्) आप को न बेचूं, (न शताय) न सैंकड़ों के बदले (न सहस्राय) न हजार के बदले और (न अयुताय) न दसों हजारों के बदले भी आप को त्यागूं। ऐसा सामर्थ्य मुझ में दो कि आप को कदापि न त्यागूं।

अद्रिवः—अद्रि। ग्रावा। गोत्र आदि नाम मेघ के हैं। निघण्टु १। १० और पर्वतवाची प्रसिद्ध ही हैं।

यह ब्रह्माण्ड ही पर्वत है। ईश्वर इसका स्वामी है। अतः वह "अद्रिवान्" है। न्याय ही इसका वज्र है। वह न्याय इसके हाथ में है। अतः वह "वज्री वा वज्रिवान्" है।

शत—यह बहुनाम है। निघण्टु ३। १। व्याकरण और कोश की प्रक्रियाएं विद्वान् स्वयं विचार लें। क्योंकि इससे ग्रन्थविस्तार हो जायगा।

जो कामवश, लोभवश, भयवश, मोहवश होकर ईश्वर को त्यागते हैं वे जगत् में बड़े हानिकारी होते हैं।

अनु०—हे विश्वव्यापक ! हे सर्वज्ञ ! हे सकल धनेन्द्र ईश ! अमूल्य धन के लिये भी आपको न बेचूं। १०६

ईश के निकट प्रतिज्ञा

++卐++ ++卐++

यदि॑न्द्र॒ याव॑त॒स्त्वमे॒ताव॑द॒हमीशी॑य।
स्तो॒तार॒मिद्दि॑धिषेय रदावसो
न पा॑प॒त्वाय॑ रासीय ॥

ऋ. ७।३२।१८

(इन्द्र) हे सर्वैश्वर्यसम्पन्न देव ! (यावतः) जितने धन के (त्वम्) आप स्वामी हैं (एतावत्) उतने धन का (यत्) यदि (अहम्) मैं भी (ईशीय) स्वामी होऊं यदि आप की ऐसी कृपा हो तब (रदावसो) हे धनदाता ईश्वर ! (स्तोतारम् इत्) आपके गान करने वाले भक्तजन को ही वह धन (दिधिषेय) दिया करूंगा। हे देव ! किन्तु (पापत्वाय न रासीय) पापकर्मों के लिये अथवा आप से विमुख नास्तिक पापी जन को वह धन न दूंगा। और न पापकर्मों में उसको खर्च करूंगा। अतः मुझे धन दीजिये।

भगवान् के अनन्त दान

इन्द्रमीशा॑नमोजसाभि
स्तोमा॑ अनूषत ।
सहस्रं यस्य॑ रातय॑ उत
वा सन्ति भूय॑सीः ॥

ऋ. १।११।८॥

(स्तोमाः) हमारे स्तोत्र, स्तव, प्रार्थना, गीत, गान इत्यादि सकल व्यापार (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्ययुक्त परमात्मा को ही (अभि+अनूषत) सब प्रकार से दिखानेवाले हों जो इन्द्र (ओजसा) बल और ज्ञानपूर्वक (ईशानम्) इस जगत् का नियामक हो रहा है अर्थात् जो बलपूर्वक इस सकल संसार को अपने नियम में रखकर शासन कर रहा है। (यस्य रातयः) जिसके दान (सहस्रम्) हजारों हैं (उत वा) अथवा सहस्र संख्या से भी जिस के (भूयसीः सन्ति) अधिक दान हैं।

आशय – हे मनुष्यो ! हम और तुम मिलकर सब उसी परमात्मा के यशोगान करें जो इस जगत् का ईश है और जिस के दान हम लोगों को सुख पहुंचाने के लिये अनन्त हैं। देखो इस पृथिवी पर कितने प्रकार के अन्न, फल, कन्द, मूल, वृक्ष, लता, औषधियां विद्यमान हैं। कितने दूध देने वाले पशु, इनके अतिरिक्त नदी, समुद्र, पर्वत इत्यादि तथा आकाश में सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्र, वायु, मेघ इत्यादि शतशः पदार्थ हमको सुख दे रहे हैं। अतः वही एक देव उपास्य है।

सकर्मा ही अन्न पाता

तरणिरित्सिषासति
वाजं पुरन्ध्या युजा ।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे
गिरा नेमिं तष्टेव सुद्र्वम् ॥

ऋ. ७।३२।२०॥

हे ईश ! (तरणिः इत्) स्तुत्यादि कर्मोंमें शीघ्रता करने वाले निरन्तर सुकर्म सेवी जन ही (युजा) सदा सहायक (पुरन्ध्या) महती बुद्धि और क्रिया द्वारा (वाजम्) उत्तमोत्तम धन (सिषासति) प्राप्त करते हैं । (पुरुहूतम्) बहुतों से आहूत (वः इन्द्रम्) आप इन्द्र को (गिरा) स्तुति द्वारा (आ नमे) नमस्कार करूं अपने ओर करूं । यहां दृष्टान्त देते हैं (तष्टा इव) जैसे वर्द्धकी=बढ़ई, लुहार, (सुद्र्वम्) शोभन दारुयुक्त (नेमिम्) चक्रवलय को नम्र करता है तद्वत् ।

सुखी कीजिये

मो षु वरुण मृन्मयं
गृहं राजन्नहं गमम् ।
मृळा सुक्षत्र मृळय ॥

ऋ. ७।८९।१॥

(वरुण) हे सर्वपूज्य महेश्वर ! (राजन्) हे परम शोभायमान् ! हे जगन्नियन्ता ईश ! आप की कृपा से (अहम्) मैं (मृन्मयम्) मृत्तिकादि निःसार वस्तुओं से निर्मित (गृहन्) गृह को (मो षु गमम्) कदापि प्राप्त न करूं किन्तु सुशोभन सुवर्णमय ही गृह मुझको प्राप्त हो (सुक्षत्र) हे सर्वशक्तिमन् ! (मृड) सुखी कीजिये (मृडय) सुखी कीजिये ।

यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न
ध्मातो अद्रिवः ।
मृळा सुक्षत्र मृळय ॥

७।८९।२॥

(अद्रिवः) हे सर्वायुधसंपन्न ! हे दण्डविधायक देव ! आपका कृपापात्र मैं उपासक (ध्मातः) वायुप्रेरित (दृतिः न) मेघ के समान (यद्) जब जब (प्रस्फुरन् इव) आप के भय से कम्पायमान होता हुआ (एमि) आप के निकट पहुँचूँ तब तब अवश्यमेव (सुक्षत्र) हे सर्वशक्तिमय ! (मृड मृडय) सुखी कीजिये सुखी कीजिये ।

ईश्वर के निकट भयभीत होकर पहुंचना चाहिये । क्षत्र नाम बल का है । अतः सुक्षत्रका अर्थ सर्वशक्तिमान् है ।

क्रत्वः समह दीनता
प्रतीपं जगमा शुचे ।
मृळा सुक्षत्र मृळय ॥

७।८९।३॥

(समह) हे सर्वैश्वर्य्य पूजित ! (शुचे) हे परमशुद्ध ! हे परमपवित्र ईश ! (दीनता) दीनता और अशक्तता के कारण (क्रत्वः) कर्तव्यों (प्रतीपम्) प्रतिकूल (जगम) सदा चला करता हूं इस में सन्देह नहीं तथापि पिता के निकट पुत्रवत् आपसे निवेदन करता हूं (सुक्षत्र) हे सर्वशक्तिमन् ! (मृड मृडय) मुझ पर दया कीजिये दया कीजिये ।

अपां मध्ये तस्थिवांसं
तृष्णाविदज्जरितारम् ।
मृळा सुक्षत्र मृळय ॥

ऋ. ७।८६।४॥

(अपां मध्ये) जल के मध्य (तस्थिवांसम्) स्थित भी (जरितारम्) आप के स्तोत्रपाठक जन को (तृष्णा) जलतृष्णा (अविदत्) प्राप्त है हे (सुक्षत्र) सर्वशक्तिमन् ! दया कीजिये दया कीजिये ।

माधुर्य्य याचन

मधु वाता ऋतायते
मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥

ऋ. १।९०।६॥

(ऋतायते) जिसके सब ही कार्य सत्य युक्त हैं उसको ऋतायन् कहते हैं उस सत्यमय पुरुष के लिये (वाताः) वायुगण (मधु क्षरति) मधु वर्षण करते हैं। (सिन्धवः) समस्त नदियां (मधु) मधु क्षरण करती हैं (नः) हम उपासकों के लिये (ओषधीः) शालि, गेहूं, जौ, कोद्रव, श्यामाक, मुद्ग इत्यादि सब ही खाद्य पदार्थ (माध्वीः) माधुर्योपेत (सन्तु) होवें।

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिता॥

ऋ. १।९०।७॥

हमारे लिये (नक्तं मधु) रात्रि मधु हो (उत) और (उषसः) प्रातःकाल मधु हो (पार्थिवं रजः) पृथिवी सम्बन्धी ग्रामादिक (मधुमत्) माधुर्योपेत हों (नः) हमारे लिये (पिता) वृष्टि प्रदान से सब को पालनेहारा (द्यौः मधु अस्तु) द्युलोक मधु हो।

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवंतु नः॥

ऋ. १।९०।८॥

(नः) हमारे लिये (वनस्पतिः) वनस्पति (मधुमान्) माधुर्ययुक्त हो (सूर्यः मधुमान् अस्तु) कर्मों में लगाने हारा सूर्य मधुमान् हो (गावः) गौएं (नः) हमारे लिये (माध्वीः भवन्तु) मधुरता युक्त हों।

हम सत्य के अधीन होवें

ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो
घोरासो अनृतद्विषः ।
तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे
नरः स्याम ये च सूरयः ॥

ऋ. ७।६६।१३॥

हे मनुष्यो ! जो आप (ऋतावानः) सत्य के ही पक्षपाती (ऋतजाताः) सत्य की रक्षा के लिये ही जिनका जीवन और उद्योग है (ऋतावृधः) सर्वदा सत्य को ही बढ़ाने, स्थापन करने और बचाने में लगे रहते हैं जो (घोरासः) अतिशय घोररूप धारण कर (अनृतद्विषः) असत्य से द्वेष करते और उसके विनाश के लिए अतिशय घोररूप से प्रयत्न करते हैं अर्थात् जो सर्वदेव और सर्व अवस्थाओं में सत्य के पक्षपाती सत्य के लिये मरने तक तैयार और असत्य के घोर विद्वेषी हैं (तेषां वः) उन आप मनुष्यों की (सुच्छर्दिष्टमे) सुखकारी (सुम्ने) शरण में (नरः स्याम) हम सब मनुष्य होवें (ये च सूरयः) और जो विद्वान् हैं वे भी आपकी छाया में निवास करें।



पाप विनाश प्रार्थना



अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घमग्ने॒
शु॑शु॒ग्ध्या र॒यिम् ।
अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥

ऋ. १।९७।१॥

(अग्ने) हे ज्योतिर्मय देव ! (नः अघम्) हमारा विनाशकारी महापाप (अपशोशुचत्) स्वयं शोकान्वित होकर विनष्ट हो जाय । हे देव ! (रयिम्) ज्ञानादिक धन (आ शुशुग्धि) सब प्रकार से हमको दीजिये हम जिससे पाप न करें (नः अघम् अप शोशुचत्) हमारा अघ विनष्ट हो ।

सु॒क्षे॒त्रि॒या सु॑गातु॒या
व॑सू॒या च॑ यजामहे ।
अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥

ऋ. १।९७।२॥

हे परमात्मन् ! (सुक्षेत्रिया) सुशोभनीय क्षेत्र के लिये (सुगातुया) सुशोभनीय मार्ग के लिये और (वसूया च) सुशोभनीय धन के लिये (यजामहे) हम आपके उद्देश से यज्ञ करते हैं (अप नः शोशुचत् अघम्) हमारा पाप नष्ट होवे ।

प्र यत्ते अग्ने सूरयो
जायेमहि प्र ते वयम् ।
अप नः शोशुचदघम् ॥

ऋ. १।६७।४

(अग्ने) हे ज्योतिर्मय महादेव ! यह प्रसिद्ध है कि (यत्) जिस हेतु (ते सूरयः) आपके पूजक और आप के भक्तजन सदैव (प्र) विविध प्रकार से जगत् प्रसिद्ध होते हैं अतः (ते वयम्) आप के सेवक हम भी (जायेमहि) आपकी कृपा से पुत्रपौत्रादि रूप से बहुत होकर विख्यात हों। (अप नः अघं शोशुचत्) हमारा पाप विनष्ट हो ।

द्विषो नो विश्वतोमुखाति
नावेव पारय ।
अप नः शोशुचदघम् ॥

ऋ. १।६७।७॥

(विश्वतोमुख) हे विश्वतोमुख ! हे सर्वद्रष्टः हे सर्वशुभाशुभकर्म निरीक्षक नाथ ! (नावा इव) जैसे नौकाद्वारा लोग नदी पार होते हैं । तद्वत् (नः) हमको (द्विषः) शत्रुओं से (अति पारय) अतिशय पार कर दीजिये । हे नाथ ! शत्रु रहित देश में हमारा वास कीजिये (नः अघं अप शोशुचत्) हमारा पाप नष्ट हो ।

स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये ।
अप नः शोशुचदघम् ॥

ऋ. १।६७।८॥

पूर्वोक्त विषय को दृढ़ता के लिये पुनः कहते। हे नाथ ! (सः) वह सर्वव्यापक सर्वनियन्ता सर्वान्तर्यामी आप (सिन्धुं इव) जैसे नदी से (नावया) नौका द्वारा पार होता है। तद्वत् (स्वस्तये) कल्याण के लिये (नः) हम लोगों को (अति पर्ष) शत्रुओं से दूर और पार कर पालिये। आपकी कृपा से (नः अघं अप शोशुच्चत्) हमारा पाप नष्ट हो।

निष्पाप होने की अभिलाषा

न पापासो मनामहे
नारायासो न जल्हवः।
यदिन्न्विन्द्रं वृषणं सचा
सुते सखायं कृणवामहै ॥

ऋ. ८।६१।११॥

(पापासः) पापी अर्थात् ब्रह्मचर्य्यादि रहित होकर हम (न मनामहे) उस परमात्मा को नहीं मानते, किन्तु पाप रहित और ब्रह्मचर्य्ययुक्त होकर ही उसकी उपासना हम करते हैं। (आरायासः) दानादि शुभ कर्मों से शून्य होकर (न) उस की आराधना नहीं करते, किन्तु दानादि शुभकर्म करते ही उसकी उपासना प्रार्थना करते हैं। (नः जल्हव) अग्निहोत्रादि से रहित होकर भी हम उसकी प्रार्थना नहीं करते। (यत् इत्) जिस हेतु (नु) इस समय (वृषणम्)

सकल कामनाओं के वर्षा करने वाले (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त सर्वद्रष्टा परमात्मा को (सुते सचा) यज्ञ कर्म में हम सब सम्मिलित होकर (सखायम्) मित्र (कृणवामहै) बनाते हैं।

आशय—जो कोई पापी दानादि रहित और अग्निहोत्रादि कर्मों से शून्य हैं वे कदापि ईश्वर को नहीं जान सकते और नहीं मान सकते हैं। इसलिये यदि उस परमात्मा को अपना मित्र बनाना चाहते हो तो निखिल दुष्कर्मों और व्यसनों से पृथक् होकर उसकी स्तुति प्रार्थना करो, तब ही वह हमारा सखा होगा।

यत्किं चेदं वरुण दैव्ये
जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि।
अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम
मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिष॥

ऋ. ७।८९।५॥

(वरुण) हे सर्वपूज्य महेश ! (मनुष्याः) हम मनुष्य हैं हम में समस्त मनुष्य सम्बन्धी दौर्बल्य दोष और अपराध विद्यमान हैं। उस स्वभाव के कारण (यत् किंच) जो कुछ (इदम्) यह अपराध समूह हम (दैव्ये जने) दिव्य जन के निकट (चरामसि) किया करते हैं तथा (अचित्ती) अज्ञान और प्रमाद से (तव यद्धर्मा) तुम्हारा विहित जिन धर्मों=नियमों (युयोपिम) को लुप्त करते हैं। (देव) हे देव ! (तस्माद् एनसः) उस पाप के निमित्त (नः मा रीरिषः) हमको न कर यह आपसे प्रार्थना है।

य आपिर्नित्यो वरुण प्रियः
सन्त्वामागांसि कृणवत्सखा ते ।
मा त एनस्वन्तो यक्षिन्भुजेम
यन्धि ष्मा विप्रः स्तुवते वरूथम् ॥

ऋ. ७।८८।६॥

(वरुण) हे वरुण ! (यः) जो (नित्यः) ध्रुव (आपिः) आपका बन्धु है जो (प्रियः सन्) आपका प्रिय होकर भी (त्वाम्) आपके (आगांसि) बहुत से अपराध (कृणवत्) किया करता है । हे भगवन् ! (ते सखा) वह पुनरपि आपका मित्र हो । ईश्वर का मित्र तब ही हो सकता जब उसकी आज्ञा पर चले । (यक्षिन्) हे यजनीय देव ! (ते) आपके शरणागत हम उपासक (एनस्वन्तः) पापी होकर (मा भुजेम) मत भोगविलास करें । पापीजन को उचित नहीं है कि वह स्वामी के धन को पापमय कार्य में लगावे । किन्तु पाप रहित होकर ही हम भोगों को भोगें । हे देव ! आप (विप्रः) सर्वज्ञ और सर्व सुखप्रद हैं, अतः (स्तुवते) अपने स्तुतिपाठक को (वरूथम्) उत्तमोत्तम वरणीय हिरण्यादिक के धन (यन्धि स्म) देवें ।

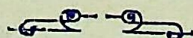
यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा
यविष्ठाचित्तिभिश्चकृमा कच्चिदागः ।
कृधीष्वस्माँ अदितेरनागान्व्येनांसि
शिश्रथो विष्वगग्ने ॥

ऋ. ४।१२।४॥

(यविष्ठ) हे निखिल दुरित निवारक ! हे अखिल मङ्गल-प्रदायक सर्वान्तर्यामी देवाधिदेव भगवन् ! (यत् चित् हि) यद्यपि (पुरुषत्रा) मानव दौर्बल्य के कारण (ते) आपके यथार्थ भाव को न जान तथा आपकी आज्ञा न पालन कर आप के भक्त-पुरुषों के मध्य (अचित्तिभिः) अज्ञानों से हम उपासक (कच्चित् आगः) कोई न कोई अपराध अवश्यमेव (चकृम) किया करते हैं तथापि (अग्ने) हे ज्योतिर्मय देव ! (अस्मान्) हम को (अदितेः) हमारे मंगल के लिये (अनागान्) पापरहित (सुकृधि) कीजिये। एवं (विष्वक्) सर्वतः विद्यमान (एनांसि) अस्मत्कृत पापों को (विशिश्रथः) विशेषरूप से शिथिल कीजिये।

आशय—मनुष्यजाति में आन्तरिक दौर्बल्य और अज्ञान बहुत है। इसी लिये हम मनुष्य ईश्वर के निकट सर्वदैव अपराधी बने रहते हैं और उसी दुर्बलता के कारण अपराध क्षमा के लिये प्रार्थना भी करते हैं। किन्तु वे पाप अथवा अपराध क्षन्तव्य नहीं हो सकते, जब तक कि उनका फल हम प्राप्त नहीं करते। यद्यपि कहीं कहीं विशुद्ध ज्ञानोदय से पापविनाश का वर्णन आता है, तथापि वैसे वचन को ज्ञानप्रशंसा मात्र के लिये समझना चाहिये। यदि दण्डभोग विना अपराधमोचन हो तो ईश्वर के राज्य में अन्याय बहुत बढ़ जाय।

निन्द्य कर्म के लिये प्रार्थना-निषेध



न त्वा रासीयाभिशस्तये
वसो न पापत्वाय सन्त्य।

न मे स्तोतामतीवा न
दुर्हितः स्यादग्ने न पापया ॥

ऋ. ८।१९।२६॥

(वसो) हे सब को वास देने हारे सब के धनस्वरूप ईश्वर ! (त्वा) आपको (अभिशस्तये) मिथ्यापवाद और हिंसादि दोषों की निवृत्ति के लिये (न रासीय) मैं न पुकारूं और न प्रार्थना करूं (सन्त्य) सब संभजनीय देव ! (पापत्वाय) अपने कृतपापों को मिटाने के लिये भी (न) आपको न मनाऊं और (न) न (मे स्तोता) मेरे सम्बन्धी भी आप को पाप प्रणोदन के लिये प्रार्थना करें । (अग्ने) हे ज्योतिः स्वरूप ! मेरा (अमतीवा) दुर्मति (दुर्हितः) शत्रु भी (न) हो और (पापया) पापमयी बुद्धि से मुझ को वह बाधा (न) पहुंचावे ।

आशय—मनुष्य अपने स्वभाववश मारण, मोहन, उच्चाटन इत्यादि अभिचार कर्म सदैव किया करते हैं । कृतपापों को दूर करने लिये भी अपने अभीष्ट देव से प्रार्थना करते हैं । किन्तु प्रभु इन कर्मों से रोकते हैं, ताकि ऐसे कुत्सित कर्म कभी न करें, जिससे समाज की हानि हो ।

पापी आदमियों से बचकर रहना

मा नो अग्नेऽव सृजो
अघायाविष्यवे रिपवे दुच्छुनायै ।

मा दत्वते दशते मादते
नो मा रीषते सहसावन्परा दाः ॥

ऋ. १।१८९।५॥

(अग्ने) हे ज्योतिःस्वरूप परमात्मन् ! (नः) हम लोगों को (अघाय) हिंसक (अविष्यवे) भक्षक, विनाशक (दुच्छुनायै) दुःखकारी (रिपवे) शत्रु के निकट (मा अव सृजः) समर्पित न कर। अर्थात् शत्रु के आधीन मत करें। (दत्वते दशते) दांतों से पीड़ा देने वाले तथा डंक मारने वाले और (अदते) अदन्तक=शृंगादि से हनन करनेवाले पशुओं के निकट (मा नः) हम लोगों को समर्पित न कर। (सहसावन्) हे तेजोमय देव ! (रीषते) हिंसक शत्रु के निकट (मा परा दाः) हम लोगों को मत फेंक।

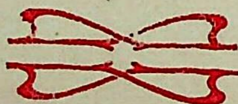
आशय—इस पृथिवी पर मंगल, अमंगल, मृदु, तीव्र, साधुः, हिंसक इत्यादि सब प्रकार के प्राणी विद्यमान हैं। अति विषधर सर्प, वृश्चिकादि, अतिशय हिंसक व्याघ्रादि, सब ही विद्यमान हैं। इन से बचकर मनुष्य को रहना चाहिये। यदि विचार किया जाय तो मनुष्य समस्त प्राणियों के महाशत्रु बन गए हैं। अति गंभीर समुद्रस्थ मत्स्यादि और आकाश में उड़नेवाले विहङ्गादिक प्राणी भी मनुष्य के हाथ से कदापि नहीं बचते। इससे सिद्ध है, कि मनुष्य अति क्रूर, हिंसक, अति दुच्छुन हैं तथापि सर्पादिक और व्याघ्रादिक हिंसक समझे जाते हैं, वास्तव में सर्पादिक की सृष्टि इस पृथिवी पर न होती तो मनुष्य जाति इससे भी अधिक निर्भय होकर नास्तिक बन जाती। इस हेतु सब प्रकार की सृष्टि हुई है। ताकि प्रत्येक मनुष्य अपना सदाचार और विचार ऐसा बना रक्खे, कि वह स्वयं

किसी का शत्रु और हिंसाकारी न बने इत्यादि शिक्षा इस मंत्र से दी गई है। प्रत्येक मंत्र का आशय यह है कि मनुष्य जाति शुद्ध और पवित्र हो।

उत वा यः सहस्य प्रविद्वान्
मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन।
अतः पाहि स्तवमान
स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः॥

ऋ. १।१४७।५॥

(उत वा) अथवा (सहस्य) हे सर्वशक्तिमन्! जगद्रक्षकदेव! आप हम जीवों पर ऐसी कृपा कीजिये, (यः) जो (विद्वान्) जानता और समझता हुआ भी (मर्तः) मनुष्य (द्वयेन) द्विविध मानस और वाचिक मंत्रों से अर्थात् विचारों से (मर्तम्) मनुष्य जाति को (मर्चयति) अतिशय हानि पहुंचाता है। (स्तवमान) हे स्तुति योग्य भगवन्! (अतः) ऐसे दुर्जन से (पाहि) हमको बचाइये। हम कदापि स्वयं ऐसा दौर्जन्य न करें और न ऐसे दुर्जनों के साथ ही रहें (अग्ने) हे अग्ने! (स्तुवन्तम्) ऐसे दुर्जन से दूर रहने के लिये प्रार्थी पुरुष को भी बचा दे। (नः) हमको (दुरिताय) पाप के लिये (माकिः धायीः) समर्थ न कीजिये। हे देव! हम दुरितभाजन न बनें, यह विनीत प्रार्थना आप से है।



घातक विनाश प्रार्थना

आरे ते॑ गो॒घ्नमु॒त पू॑रुष॒घ्नं
क्षय॑द्वीर सु॒म्नम॒स्मे ते॑ अस्तु ।
मृ॒ळा च॑ नो॒ अधि॑ च ब्रूहि दे॒वाधा॑
च नः॒ शर्म॑ यच्छ द्वि॒बर्हाः॑ ॥

ऋ. १।११४।१०॥

(क्षयद्वीर) धर्मवीर, युद्धवीर, परोपकारवीर, निर्भय निर्विकार तथा एवंविध मनुष्यों के रक्षक परमात्मन् ! (ते) आप की ही सृष्टि में विद्यमान जो (गोघ्नम्) गोवों के मारनेवाले (उत) और (पुरुषघ्नम्) भद्र पुरुष को हानि पहुंचाने वाले हैं उन्हें (आरे) आप हम लोगों से दूर देश में फेंक दीजिये (अस्मे) हम लोगों में (ते सुम्नम् अस्तु) आपका सुखमय पदार्थ विद्यमान हो, (च नः मृड) और हमको सदैव सुखी कीजिये । (च अधिब्रूहि) हे अन्तर्यामी देव ! हम लोगों को उपदेश दीजिये (देव) सकल गुणाधार सूर्यचन्द्रादिक प्रकाशक देव ! (अध च) और (नः) हमको (शर्म यच्छ) कल्याण दीजिये क्योंकि (द्विबर्हा) आप इस लोक और उस लोक दोनों के स्वामी और रक्षक हैं इसलिये आप से ही हम याचना करते हैं । हे देव ! आपको छोड़ किस दूसरे देव से याचना करें ।

आशय—यद्यपि सब पशु दयापात्र हैं तथापि गोजाति सब से प्रथय अहिंसनीय पशु पंक्ति में गिनी जाती है क्योंकि वह मातृवत्

मनुष्यों की दुग्धादि से रक्षा करती है। इसलिये हम लोगों में कोई भी गोघ्न न हो। जो कोई गोमेध यज्ञ में गोहिंसा विहित समझते हैं, वे इस मंत्र पर ध्यान दें। अतः मनुष्य समाज में गोघ्न और पुरुषघ्न कोई न रहने पावे। तब ही ईश्वर का सत्य आशीर्वाद हम मनुष्यों में विराजमान होगा। और तब ही हम सुख से दिवस विता सकते हैं इसलिये स्वार्थसिद्धि के लिये समर सर्वथा निषिद्ध जानना चाहिये।

असति सत् प्रतिष्ठितं
सति भूतं प्रतिष्ठितम्।
भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते
प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः
सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥

अ. १७।१।१६॥

(असति) प्रकृति में (सत् प्रतितिष्ठं) आत्मा रहा है। (सति) आत्मा में (भूतं प्रतिष्ठितं) भूतकालीन सब कुछ रहा है। (भव्ये) भविष्य में (भूतं) भूत (ह) निश्चय (आहितं) रखा है। (भव्यं) भविष्य (भूते प्रतिष्ठितं) भूत में रखा है। हे (विष्णो) व्यापक देव! (तव इत्) तेरे ही ये (बहुधा) बहुत प्रकार के (वीर्याणि) पराक्रम हैं। (त्वं) तू (नः) हमको (विश्वरूपैः पशुभिः) विविध रंगरूप वाले पशुओं से (पृणीहि) भरपूर कर। (परमे) परम

(व्योमन्) रक्षक (सुधायां) उत्तम धारणाशक्ति में (मा) मुझे (धेहि) रख।

(१) प्रकृति में आत्मा का कार्य हो रहा है, (२) आत्मा में भूतकालीन बातें संस्कार रूप से रहती हैं, (३) भूतकालीन कर्मों के संस्कार भविष्य काल के पुरुषार्थं में दिखाई देते हैं, अर्थात् (४) भविष्य कालीन स्थिति में मानो भूतकालीन स्थिति ही प्रतिबिंबित होगी, (५) जो इस सृष्टि में चमत्कार दिखाई देते हैं वे सब व्यापक परमात्मा के ही हैं, (६) उसकी कृपा से हमें सब भोग मिलेंगे और (७) हम अपनी धारणा शक्ति का विकास कर उसके साथ रहेंगे और निश्चय से परम आनंद प्राप्त करेंगे।

परमेश्वर सब की अनुकूलता

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम
राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।
इतो जातो विश्वमिदं
वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण॥

ऋ. १।९८।१॥

(वैश्वानरस्य) विश्व के अन्दर जो पुरुष है उसकी (सुमतौ स्याम) उत्तम बुद्धि में हम रहें। वह (भुवनानां राजा) भुवनों का

राजा सब की (कं) आनन्दप्रदा (अभिश्रीः) शोभा है। वह (जातः) प्रकट होते ही (इतः) इस विश्व में (विचष्टे) प्रकाशित होता है। (वैश्वानरः सूर्येण) यह विश्वव्यापक पुरुष सूर्य के साथ (यतते) कार्य करता है।

प्राकृतिक जगत् के अन्दर एक व्यापक पुरुष है। उसके अनुकूल व्यवहार करके उसकी सुबुद्धि लेनी चाहिये वही संपूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है और इस सूर्य के द्वारा भी वही कार्य करता है।

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं
धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे
रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥

ऋ. १।८९।५॥

(वयं) हम सब (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (तं) उस (जगतः तस्थुषः पतिं) जंगम और स्थावर के पति, (धियं जिन्वं) बुद्धि के प्रेरक (ईशानं) ईश्वर की (हूमहे) प्रार्थना करते हैं। (यथा) जैसे वह (पूषा) पोषक ईश्वर (नः) हमारे (वेदसां वृधे) धनों तथा ज्ञानों की वृद्धि करने के लिये होता है तथा हमारे (स्वस्तये) कल्याण के लिये रक्षणकर्ता तथा (अदब्धः पायुः) न दबने वाला संरक्षक (असत्) होवे।

स्थावर जंगम जगत् के एक ईश्वर की ही हम उपासना करते हैं, इसलिये कि वह हमारी बुद्धियों को प्रेरणा देवे और हमारा उत्तम रक्षण करे।

यत्रा॑ सुप॒र्णा अ॒मृत॑स्य
भा॒गमनि॑मेषं वि॒दथा॑भि॒ स्वर॑न्ति ।
इ॒नो विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य गो॒पाः
स मा॒ धीरः॒ पाक॒मत्रा॒ वि॑वेश ॥

ऋ. १।१६४।२१॥

(सुपर्णाः) अनेक पक्षी अर्थात् अनेक जीवात्मा (यत्र) जहां (अमृतस्य भागं) अमृत के भाग के प्रति (अनिमेषं) खंड रहित होकर (विदथा) ज्ञान के साथ (अभिस्वरंति) पहुंचते हैं, वह (विश्वस्य भुवनस्य) संपूर्ण जगत् का (इनः) स्वामी और (गोपाः) रक्षक है। (सः धीरः) वह धीर वीर महाज्ञानी परमात्मदेव (अत्र पाकं मा) मुझ पकने योग्य भक्त में (अविवेश) प्रविष्ट हुआ है।

जब जीवात्मा उसी ईश्वर में अमृत के भाग को प्राप्त करते हैं। वही भुवन का रक्षक ईश्वर मेरे अन्दर है, यह बात सदा ध्यान में धरने योग्य है।

उदु॑त्त॒मं व॑रुण॒ पाश॑म॒स्मदवा॑ध॒मं
वि म॑ध्य॒मं श्र॑थाय ।
अथा॑ व॒यमा॑दित्य व्र॒ते
तवाना॑गसो॒ अदि॑तये स्याम ॥

ऋ. १।२४।१५॥

हे (वरुण) श्रेष्ठदेव ! हमारे (उत्तमं पाशं) ऊर्ध्वभाग स्थित पाशको तथा (अधमं) निम्न भाग के पाशको और (मध्यमं)

मध्यभाग के पाशको (उत् अव विश्रथाय) शिथिल कर। हे (आदित्य) प्रकाशमान ईश्वर ! (वयं) हम (तव व्रते) तेरे नियम में रहते हुए (अन्–आगसः) निष्पाप बन कर (अ-दितये स्याम) स्वतंत्रता=बन्धनरहितता=मुक्ति के लिये योग्य हो जायेंगे।

स्थूल सूक्ष्म और कारण देह के पाश अधम, मध्यम और उत्तम नाम से क्रमशः कहे गये हैं। परमेश्वर की भक्ति से और पुरुषार्थ करने से तथा परमात्मा के नियम पालन करने से मनुष्य निष्पाप होकर स्वतंत्रता मुक्ति के लिये योग्य होता है। इसीलिये उसी एक अद्वितीय प्रभु की भक्ति हर एक को करनी चाहिये।

धन प्रार्थना

दा नो अग्ने धिया रयिं सुवीरं
स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तम्।
न यं यावा तरति यातुमावान् ॥

ऋ. ७।१।५॥

हे (सहस्य अग्ने) बलवान् तेजस्वी देव ! तू (धिया) बुद्धि से युक्त (सुवीरं) वीर्य्य से युक्त (स्वपत्यं) सन्तति से युक्त (प्रशस्तं) प्रशंसित (रयिं) धन (नः दाः) हमें दे (यं) जिस धन को (यातुमा-वान् यावा) दुष्ट शत्रु (न तरति) छीन नहीं सकता।

धन ऐसा प्राप्त करना चाहिये कि जिसके साथ उत्तम बुद्धि, उत्तम शौर्य, उत्तम सन्तान हों और जो चोर के हाथ में न लगे।

त्वं विश्वस्य धनदा असि
श्रुतो य ईं भवन्त्याजयः।
तवायं विश्वः पुरुहूत
पार्थिवोऽवस्युर्नाम भिक्षते॥

ऋ. ७।३२।१७॥

(त्वं) तू (विश्वस्य) सब का (धनदाः) धन देने वाला (असि) है। (ये आजयः) जो युद्ध यहां (भवन्ति) होते हैं (ईं) उनमें भी (श्रुतः) तेरा यश होता है। हे (पुरुहूत) प्रशंसित प्रभो! (अयं) यह (विश्वः) सब (पार्थिवः) पृथिवी पर रहने वाला (अवस्युः) अपनी रक्षा करने का इच्छुक मनुष्य (तवनाम) तेरे पास ही (भिक्षते) याचना करता है।

परमेश्वर सबको सब प्रकार का ऐश्वर्य देने वाला है इसलिये सब मनुष्य उसी की याचना करते हैं।

अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि
भद्रा इन्द्रस्य रातयः।
सो अस्य कामं विधतो न
रोषति मनो दानाय चोदयन्॥

ऋ. ८।९९।४॥

(इन्द्रस्य) इन्द्र के (रातयः) दान (भद्राः) कल्याण कारक ही हैं। (अन्-अर्श-रातिं) जिसका दान हानिकारक नहीं है, ऐसे (वसु-दां) धन दाता की (उपस्तुहि) प्रशंसा करो, जो (अस्य) इसके (कामं) इच्छा के अनुसार (विधतः) कार्य करता है, उस पर (सः) वह (न) (रोषति) क्रोध नहीं करता और वह (मनः) मन (दानाय) दान के लिये (चोदयन्) प्रेरित करता है।

रक्षा प्रार्थना

++卐++

पाहि नो अग्ने रक्षसः
पाहि धूर्तेरराव्णः।
पाहि रीषत उत वा
जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥

ऋ. १।३६।१५

हे (बृहद्भानो) विशेष प्रकाशमान् (यविष्ठ्य) बलवान् (अग्ने) तेजस्वी प्रभो ! (नः) हमें (रक्षसः) राक्षसों से (पाहि) बचाओ। (धूर्तेः अराव्णः) धूर्त स्वार्थियों से (पाहि) बचाओ। तथा (जिघांसतः) हनन करने वाले शत्रु से (पाहि) बचाओ और (रीषतः) विनाश करने वाले शत्रु से (पाहि) रक्षा करो।

क्रूर, राक्षस, धूर्त, स्वार्थी घातक और विनाशकों से अपना बचाव करना चाहिये।

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य
याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्टयधरः सस्पदीष्ट
यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातुः ॥

ऋ. ३।५३।२१॥

हे (इन्द्र) इन्द्र! (अद्य) आज ही (बहुलाभिः ऊतिभिः) अनेक रक्षणों से (नः) हम सबका रक्षण करो। हे (मघवन्) धनवान्! हे (शूर) शूर! हम सबको (श्रेष्ठाभिः) श्रेष्ठताओं के साथ (यात्) गमन करने वालों से (जिन्व) आगे बढ़ाओ। (यो नो द्वेष्टि) जो हम सबसे द्वेष करता है, (सः) उसको (अधरः) नीचे (पदीष्ट) दबाओ। हम सब (यं उ द्विष्मः) जिसका द्वेष करते हैं (तं उ) उसको (प्राणः जहातु) प्राण छोड़ देवे।

तवाहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः।
द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् ॥

ऋ. ५।९।६॥

हे (अग्ने) तेजस्वी देव! (मित्रस्य तव) मित्ररूप तेरे (प्रशस्तिभिः ऊतिभिः) प्रशंसनीय संरक्षणों से सुरक्षित होकर (द्वेषः युतः न) द्वेषी लोगों के समान अहित करने वाले (मर्त्यानां) दुष्ट मनुष्य के (दुरिता अहं तुर्याम) दुष्ट कर्मों से दूर सुरक्षित रहूं। हे ईश्वर! तू हमारा मित्र है और हमारा उत्तम संरक्षण करता है। तेरे अद्भुत संरक्षण से सुरक्षित होते हुए हम दुष्ट मनुष्यों के कर्तृतों

से अपने आपको बचाएं। क्योंकि जो मनुष्य तेरी रक्षा में आ जाता है, उसको डराने वाला जगत् में कौन है ?

विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां
नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम्।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं
राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम्॥

ऋ. ६।१।८॥

(शश्वतीनां विशां कविं) सनातन प्रजाओं का कवि अथवा वाणी का प्रेरक, (विश्-पतिं) प्रजापालक (नितोशनं) शत्रुनाशक (चर्षणीनां वृषभं) मनुष्यों की बलवर्धक, (प्रेतीषणि) प्रेरक (इषयंतं) अन्नादि की सिद्धता करने वाला, (पावकं) पवित्रता करने वाला (रयीणां यजतं) धनों के दाता (राजन्तं अग्निं) प्रकाशमान तेजस्वी देव की हम उपासना करते हैं।

ईश्वर-उपासना के समय इन गुणों का मनन करना चाहिए। ईश्वर के रक्षण में सुरक्षित होकर, मन की कामना परिपूर्ण करके, वीरों के साथ रहनेवाला धन प्राप्त करने के पश्चात् अन्नादि और यश प्राप्त करना चाहिये।

नाना ह्यग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः।
तूर्वन्तो दस्युमायवो
व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम्॥

ऋ. ६।१४।३॥

हे (अग्ने) तेजस्वी देव ! (रायः अर्यः) धनके स्वामी (नाना) अनेक प्रकार से (अवसे स्पर्धन्ते) धनकी स्वामिता के लिये स्पर्धा करते हैं। (आयवः) मनुष्य (दस्युं तूर्वन्तः) शत्रुओं का नाश करते हुए (व्रतैः) स्वकीय नियमों से (अव्रतं) नियम न पालनेवाले को (सीक्षन्ते) पराभूत करते हैं।

हे ईश्वर ! शत्रु के धन मानो अनाथ होकर रक्षाके लिये उनके पास जाने की इच्छा करते हैं, कि जो सज्जन उत्तम नियमों का स्वयं पालन करके उत्तम सत्कर्मों के द्वारा पुरुषार्थहीन दुराचारी शत्रु का पराभव करते हैं।

सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे।
जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥

ऋ. ६।१६।२९॥

हे (जातवेदः विचर्षणे) ज्ञानमय सर्वद्रष्टा ! (सुवीरं रयिं) उत्तम वीरों से युक्त धन (आभर) दो। और (सुक्रतो) हे उत्तम कर्म करनेवाले ! (रक्षांसि जहि) दुष्टों का नाश कर।

वीरता के साथ रहनेवाला धन प्राप्त करना चाहिये। और दुष्टों को दूर करना चाहिये।

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि
भद्रे सौमनसे स्याम।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो
अस्मे आराच्चिद्द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥

ऋ. ६।४७।१३॥

(तस्य यज्ञियस्य सुमतौ) उस पूजनीय परमेश्वर की सुमति में (अपि) तथा (भद्रे सौमनसे) उत्तम मन के अंदर (वयं) हम (स्याम) होवें। अर्थात् हमारे विषय में उसका मन उत्तम भाव धारण करे। वह (सुत्रामा) उत्तम रक्षक (स्ववाँ) आत्मशक्ति से युक्त (इन्द्रः) प्रभु (द्वेषः) शत्रुओं को (अरात्) दूर से ही (सनुतः युयोतु) अंदर ही अंदर से नष्ट करे।

हम ऐसा योग्य आचरण करें, कि जिससे परमेश्वर हमें प्रेम से अपने पास करे। और अपना उत्तम भावमय मन हमारे ऊपर सदा रखे। और हमारे शत्रुओं को दूर करे।

पाहि नो अग्ने रक्षसो
अजुंष्टात्पाहि धूर्तेरररुषो अघायोः।
त्वा युजा पृतनायूँरभि ष्याम् ॥

ऋ. ७।१।१३॥

हे (अग्ने) तेजस्वी ईश्वर! (अजुष्टात् रक्षसः) हीन राक्षसों अथवा अप्रेमी जनों से (नः पाहि) हमारी रक्षा कर। (अररुषः धूर्तेः) अदाता धूर्त से, तथा (अघायोः) पापी से हमें (पाहि) सुरक्षित रख। (त्वा युजा) तेरे साथ रहकर (पृतनायून्) सैन्य लेकर चढ़ाई करनेवालों का (अभिष्याम्) पराभव करें।

हे ईश्वर! सब दुष्ट दुर्जनों से हमारा बचाव कर। तेरी शक्ति से सुरक्षित होते हुए हम शत्रुसेना पर चढ़ाई करके उनको पराजय करें।

त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात्
पुर इन्द्र नि पाहि विश्वतः।

आरे अस्मत्कृणुहि दैव्यं
भयमारे हेतीरदेवीः ॥

अ. ८।६१।१६॥

हे (इन्द्र) प्रभो ! (त्वं) तू (पश्चात्) पीछे से, (अधरात्) नीचे से, (उत्तरात्) ऊपर से और (पुरः) आगे से तात्पर्य (विश्वतः) सब ओर से (नः नि पाहि) हमारी रक्षा कर। (दैव्यं भयं) आधिदैविक भीति को (अस्मत् आरे कृणुहि) हम से दूर कर। और (अदेवीः हेतीः) राक्षसी शत्रु भी हम से (आरे) दूर रहें।

परमेश्वर ही सब प्रकार से हमारी रक्षा कर सकता है!

अवशसा निःशसा यत् परा
शसोपारिम जाग्रतो यत्स्वपन्तः।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्य-
जुष्टान्यारे अस्मद्दधातु ॥

अ. ६।४५।२॥

(जाग्रतः) जागते हुए अथवा (स्वपन्तः) स्वप्न में जो २ पाप हमने (अवशसा) बुरी इच्छा से, (निः शसा) बुरी कल्पना से अथवा (परा-शसा) बुरी अवस्था के कारण (उपआरिम) किये हों, (अ-जुष्टानि) जो निन्दनीय (दुष्कृतानि) दुराचार हुए हों (विश्वानि) उन सब के कारणों को (अग्निः अस्मत् आरे दधातु) परमेश्वर हम से सब दूर करे।

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽपि मृषा चरामसि ।
प्रचेता न आंगिरसो दुरितात्पात्वंहसः ॥

अ. ६।४२।३॥

(इन्द्र) हे प्रभो ! (ब्रह्मणस्पते) ज्ञान के स्वामिन् ! (यत्) जो (मृषा चरामसि) झूठे करतूत हमारे से हुए हों, (प्रचेता) सर्वज्ञानी प्रभु (आंगिरसः) प्राणप्यारा उन सब से (अपि) तथा अन्य (दुरितात् अंहसः) दुरित पाप से (नः) हमें (पातु) बचावे ।

गमद्वाजं वाजयन्निन्द्र मर्त्यो
यस्य त्वमाविता भुवः ।
अस्माकं बोध्यविता
रथानामस्माकं शूर नृणाम् ॥

अ. ७।३२।११॥

हे (शूर) शूर पापनाशक (इन्द्र) प्रभो ! तू (यस्य अविता) जिसका रक्षक (भुवः) होता है वह (मर्त्यः) मनुष्य (वाजयन्) बलिष्ठ होता हुआ (वाजं) बलको (गमत्) प्राप्त करता है । इसलिये (अस्माकं) हमारे रथों का और (नृणां) मनुष्यों का (अविता) रक्षक तू (बोधि) हो ।

परमेश्वर जिसका रक्षक होता है वह बलवान् बन कर श्रेष्ठ हो जाता है, इसलिये हे ईश ! तू हमारा रक्षक हो जिससे हम बलवान् बन जाएं ।

अदब्धेभिस्तवं गोपाभिरिष्टेऽस्माकं
पाहि त्रिषधस्थ सूरीन् ।
रक्षा च नो ददुषां शर्धो
अग्ने वैश्वानर प्र च तारीः स्तवानः ॥

ऋ. ६।८।७॥

हे (इष्टे त्रिषधस्थ) यजनीय तीनों=पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्यौ स्थानों में रहने वाले ! (तव) अपनी (अदब्धेभिः गोपाभिः) न दबनेवाली रक्षाओं के द्वारा (अस्माकं सूरीन् पाहि) हमारे ज्ञानियों की रक्षा कर। हे (अग्ने) तेजस्वी देव (नः ददुषां शर्धः) हम दाताओं का बल (रक्ष) सुरक्षित रख। हे (वैश्वानर) सब के चालक (स्तवानः) स्तुति किया हुआ तू हमें दुःख के (तारीः) पार ले जा।

हे प्रभो ! तू अपने अद्भुत रक्षणों से हमारी पूर्ण रूप से रक्षा कर और हम में बल स्थापित करके हमें संपूर्ण दुःखों के पार ले चल।

यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥

ऋ. १।५।४॥

(यस्य संस्थे) जिसकी संस्था में रहने वाले (हरी) कार्यभार का हरण करने वाले उच्च और साधारण इन दोनों से (समत्सु) युद्धों में (शत्रवः) शत्रु भी (न वृण्वते) स्पर्धा नहीं कर सकते, (तस्मै इन्द्राय) उस प्रभु की (गायत) स्तुति कीजिये।

जो प्रभु के भक्त, जनसेवा रूपी प्रभुकार्य में अपने आप को समर्पित करते हैं, वे समर्थ हों या न हों, उनका मुकाबला शत्रु भी नहीं कर सकता। यह सामर्थ्य जिस प्रभु की शक्ति से प्राप्त होता है उसी एक प्रभु की उपासना कीजिये।

बृहस्पतिर्नः परि पातु
पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः
सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु॥

ऋ. १०।४२।११॥

(बृहस्पतिः) ज्ञान का स्वामी ईश्वर (नः) हमें (पश्चात्, उत्तरस्मात्, उत अधरात्) पीछे से, आगे से और नीचे से, (अघायोः) पापी से (पातु) बचावे। (सखा) मित्र (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् प्रभु (परस्तात् उत मध्यतः) परे से और बीच में से (नः) हमारे (सखिभ्यः) मित्रों को तथा हमको (वरिवः कृणोतु) श्रेष्ठ धन देवे।

ज्ञानी ईश्वर हमारा सब प्रकार से बचाव करे और पापी को हम से दूर रखे। हमारा सच्चा मित्र प्रभु ईश्वर हमें और हमारे मित्रों को सब प्रकार का धन देवे।

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि॥

ऋ. १।४।६॥

हे (दस्म) शत्रुनाशक प्रभो ! (उत) निश्चय से (अरिः) शत्रु भी (नः) हमको (सुभगान्) उत्तम भाग्यवान् कहेगा, फिर (कृष्टयः) हमारे मित्रभूत मनुष्य तो (वोचेयुः) कहेंगे ही। इसमें क्या आश्चर्य है ? तथापि हम (इन्द्रस्य) प्रभु की (शर्मणि) सुखमय रक्षा में (स्याम) रहेंगे ही।

अपना आचरण ऐसा शुद्ध और पवित्र होना चाहिये कि जिस से शत्रु के मुख से भी प्रशंसा निकल आये। अपनी सब अवस्था इतनी उच्च होनी चाहिये कि जिससे शत्रु को भी अचंभा होवे। अपने मित्र तो हमारी तारीफ करेंगे ही। उस में कोई विशेषता नहीं है। इतनी अवस्था श्रेष्ठ होने पर भी परमेश्वर की भक्ति से विमुख नहीं होना चाहिये।

विश्वे त इन्द्र वीर्यं देवा अनु क्रतुं ददुः।
भुवो विश्वस्य गोपतिः
पुरुष्टुत भद्रा इन्द्रस्य रातयः॥

ऋ० ८।६२।७॥

हे (इन्द्र) परम समर्थ प्रभो ! (विश्वे देवाः) सब सूर्यादि देव (ते वीर्य्यं) तेरे सामर्थ्य तथा (क्रतुं अनु) कर्म और ज्ञान के अनुकूल (क्रतुं ददुः) अपनी क्रिया करते हैं। हे (पुरुष्टुत) अनन्त स्तुतियों वाले ! तू (विश्वस्य) सारे संसार का (गोपतिः) रक्षक (भुवः) है। तुझ (इन्द्रस्य) प्रभु के (रातयः) दान (भद्राः) कल्याणकारक है।

सूर्य चन्द्र आदि समस्त पदार्थ परमात्मा की रचना होनेके कारण उसी की व्यवस्था के अनुसार चल रहे हैं॥

अभय प्रार्थना

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं
द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं
पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥

अ. १६।१५।५॥

(नः) हम सब के लिये (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्षं (अभयं करति) अभय साधक होवे और (इमे उभे द्यावापृथिवी) ये दोनों द्यावा-पृथिवी (अभयं) अभयदात्री हों। (पश्चात् अभयं) पीछे से अभय, आगे से, (पुरस्तात् अभयं) सामने से अभय और (उत्तरात् अधरात् अभयं नः अस्तु) ऊपर से और नीचे से हम सब के लिये अभय होवे।

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं
ज्ञातादभयं पुरो यः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः
सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥

अ० १६।१५।६॥

(मित्रात् अभयं) मित्र से अभय (अमित्रात् अभयं) शत्रु से अभय (ज्ञातात् अभयं) ज्ञात पदार्थ से अभय और (यः पुरः, अभयं)

अज्ञात पदार्थ से हम सब के लिये अभय होवे। (नक्तं अभयं) रात्री के समय अभय और (दिवः नः अभयं) दिन के समय हम सब निर्भय होकर रहें। और (सर्वाः आशाः मम मित्रं भवन्तु) सब दिशा में रहने वाले हमारे मित्र बनकर रहें।

यत॑ इन्द्र॒ भया॑महे॒ ततो॑
नो॒ अभ॑यं कृधि।
मघ॑वञ्छ॒ग्धि तव॒ तन्न॑
ऊ॒तिभि॒र्वि द्विषो॒ वि मृधो॑जहि॥

ऋ. ८।६१।१३॥

(इन्द्रः) हे सर्वद्रष्टा प्रभो परमात्मन्! (यतः) जिस जिस सिंहादि प्राणी से (भयामहे) हम डरते हैं (ततः) उस उससे (नः) हमको (अभयं कृधि) अभय दान दीजिये क्योंकि (मघवन्) हे सकलैश्वर्यसम्पन्न देव! (शग्धि) आप समर्थ हैं (तत्) इस हेतु (तव ऊतिभिः) आप अपनी रक्षाओं से (नः द्विषः) हमारे आन्तरिक और बाह्य द्वेषकारी शत्रुओं को (विजहि) विनष्ट कीजिये। (मृधः) मनुष्यों को धोखा देने वाले, कपटी वञ्चक पुरुषों को (वि जहि) विनष्ट कीजिये।

आशय—मनुष्य जाति नाना कुसंस्कारों और विविध पापों से युक्त होने के कारण सदैव भयभीत रहती है, और मनुष्य परस्पर एक दूसरे के महान् शत्रु हैं, यह प्रत्यक्ष देखा जाता है। इसलिये कल्याणेच्छु पुरुष सदैव इन कर्मों से दूर रहें, तब ही उनको भद्र और मंगल पहुंच सकते हैं। और सर्वदा परमात्मा की उपासना किया करें,

क्योंकि परमेश्वर सबसे बलवान् होने के कारण हमें आन्तरिक तथा बाह्य सब प्रकार के रिपुओं से बचा सकता है ॥

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः
सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं
कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥

ऋ. ६।४७।१२॥

(सुत्रामा) उत्तम रक्षक (स्ववान्) आत्मशक्ति से युक्त (सुमृळीकः) उत्तम सुख देने वाला (विश्ववेदाः) सर्वज्ञ (इन्द्रः) प्रभु (अवोभिः) अपनी रक्षाओं के साथ हमारा रक्षण करनेवाला (भवतु) होवे । (द्वेषः बाधतां) शत्रुओं का नाश करे, हमें (अभयं कृणोतु) अभय करे, और हम (सुवीर्यस्य पतयः) उत्तम वीर्य= सामर्थ्य के स्वामी (स्याम) होवें ।

परमात्मा सब का उत्तम रक्षक स्वकीय आत्मशक्ति से युक्त सर्वज्ञ है, वह अपनी रक्षकशक्ति से हमारी पूर्ण रक्षा कर, हमारे शत्रुओं को दूर कर, हमें पूर्ण रीति से निर्भय करे, और उत्तम वीर्य हमारे पास सदा जागृत रहे ।

यतोयतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः

य० ३६।२२॥

(यतः यतः) जिस जिस स्थान में तू (सं ईहसे) कर्म करता है उस उस स्थान में (नः) हमारे लिये (अ-भयं) अभय दान (कुरु) कर। (नः प्रजाभ्यः) हमारी प्रजा के लिये (शं अभयं) कल्याण कारक अभय (कुरु) करो और (नः पशुभ्यः) हमारे पशुओं को भी (अभयं) अभय दान कर।

हे ईश्वर! जिस जिस स्थान में तुम्हारा कर्म चलता है, उस उस स्थान से हमारे लिये, हमारी प्रजाओं के लिये, कल्याणमय अभय दान करो।

सख्ये त इन्द्र वाजिनो
मा भेम शवसस्पते।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम्॥

ऋ० १।११।२॥

हे (शवसः पते इन्द्र) शक्ति के स्वामी प्रभो! (ते सख्ये) तेरी मित्रता में हम (वाजिनः) बलवान् होने के कारण किसी से भी (मा भेम) नहीं डरते। (जेतारं) विजयी और (अ-पराजितं) अपराजित होने के कारण (त्वां) तुझे ही (अभिप्रणोनुमः) हम नमन करते हैं।

प्रभु के भक्तों में ऐसा विलक्षण बल आता कि किसी से भी डरते नहीं, क्योंकि जिनका रक्षक स्वयं प्रभु होवे, उनको डरानेवाले कौन हो सकते हैं? वही प्रभु सदा अपराजित और हमेशा विजयी है, इसलिये उसी को नमन करना योग्य है।

अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु
नोऽभयं सोमः सविता नः कृणोतु ।
अभयं नोस्तूर्वऽन्तरिक्षं सप्तऋषीणां
च हविषाऽभयं नो अस्तु ॥

अ. ६।४०।१॥

(द्यावापृथिवी) द्यावा-पृथिवी से (इह) यहां (नः) हम सब को (अभयं अस्तु) अभय हो, (सोमः सविता) सोम और सविता (नः) हम सब के लिये (अभयं कृणोतु) अभय करे। (उरु अन्तरिक्षं नः अभयं अस्तु) महान् अंतरिक्ष हम को भय न देवे। (च सप्तऋषीणां हविषा नः अभयं अस्तु) और सप्त ऋषियों इन्द्रियों के हवि=विषयों से हम सब को अभय प्राप्त हो।

प्राण की निर्भयता

यथा द्यौश्च पृथिवी च न
बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥

अ. २।१५।१॥

(यथा) जिस प्रकार (द्यौः) द्युलोक (च) और (पृथिवी) पृथिवी (न बिभीतः) डरते नहीं (च) और इसलिये (न रिष्यतः) हिंसित नहीं होते, (एव) इसी प्रकार हे (मे प्राण) मेरे प्राण ! (मा बिभेः) तू भी मत डर ।

यथाहश्च रात्री च
न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥

अ. २।१५।२॥

(यथा) जिस प्रकार (अहः) दिन (च) और (रात्री) रात्री (न बिभीतः) नहीं डरते (च) और इसलिये (न रिष्यतः) हीन नहीं होते, (एव मे प्राण ! मा बिभेः) इसी प्रकार हे मेरे प्राण ! तू मत डर ।

यथा सूर्यश्च चंद्रश्च
न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥

अ. २।१५।३॥

(यथा) जिस प्रकार (सूर्यः) सूर्य (च) और (चन्द्रः) चंद्र (न बिभीतः) डरते नहीं, (च न रिष्यतः) इसलिये हानि को नहीं प्राप्त होते, इसी प्रकार (एव···) हे मेरे प्राण ! तू मत डर ।

यथा ब्रह्म च क्षत्रं च
न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥

अ. २।१५।४॥

यथा जिस प्रकार (ब्रह्म) ज्ञान और ज्ञानी (क्षत्रं) शौर्य और शूरवीर (न···) नहीं डरते, इसलिये नष्ट भ्रष्ट नहीं होते, इसी प्रकार हे मेरे प्राण ! तू मत डर ।

यथा सत्यं चानृतं च
न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥

अ. २।१५।५॥

यथा जिस प्रकार (सत्यं) सत्य और (अन्-ऋतं) अत्यंत सरलता, ये कभी (न···) डरते नहीं, इसलिये विनष्ट नहीं होते, इसी प्रकार हे मेरे प्राण ! तू मत डर ।

यथा भूतं च भव्यं च
न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥

अ. २।१५।६॥

यथा जिस प्रकार (भूतं) भूत और (भव्यं) भविष्य (न···) डरता नहीं, इसलिये नष्ट नहीं होता, इसी प्रकार हे मेरे प्राण ! तू मत डर।

इस सूक्त में स्पष्ट कहा है कि डर ही नाश का हेतु है। इसी लिये हर एक को निर्भय होकर धर्म-कार्य करना चाहिये। डरने से शक्ति की क्षीणता होती है और निर्बलता आती है। अर्थात् जो बारंबार डरते हैं, उनका मन अत्यंत कमजोर होता है। और मन अशक्त होने पर उस पुरुष में बल बढ़ने की संभावना ही नहीं है।

वैदिक धर्मी स्त्री पुरुषों को यह सूक्त मनन करने योग्य है। यह सूक्त कहता है कि "देखो ! पृथिवी और द्युलोक, सूर्य और चंद्र, आदि सब इसलिये बलवान् हैं, कि वे नहीं डरते। यदि उस में भीति उत्पन्न होगी, तो उसकी स्थिति नहीं रहेगी। इस प्रकार जो ब्राह्मण और क्षत्रिय नहीं डरते हैं, वे ही शक्तिशाली होते हैं, परंतु जो डरते हैं, वे क्षीणबल हो जाते हैं। इसलिये प्रत्येक मनुष्य निडर होकर धर्म-कर्य करे, आगे बढ़े और उन्नति प्राप्त करे।" तात्पर्य यह है, कि वैदिक धर्मी मनुष्य को सत्य धर्म के पालन के लिये निडर होना चाहिये। अतः गृहस्थ स्त्री पुरुषों को उचित है, कि वे अपने बाल-बच्चों को बालकपन में ऐसी शिक्षा दें, कि वे निडर होकर बढ़ें और उनके मन में किसी प्रकार का डरपोकपन न रहे।



विजय प्रार्थना

वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र
त्वया युजा वयम् ।
सासह्याम पृतन्यतः ॥

ऋ. १।८।४॥

हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वयं) हम (त्वया युजा) तेरे साथ रहकर तथा (अस्तृभिः) अस्त्रों का प्रयोग करनेवाले शूरवीरों के साथ रहके (पृतन्यतः) सेना से हमला करने वाले शत्रु का (सासह्याम) पराभव करेंगे ।

वीर मनुष्य को उचित है कि वह स्वयं परमेश्वर की भक्ति करे और परमात्मा को अपना रक्षक माने। तथा शस्त्रास्त्रों का उत्तम उपयोग करने में प्रवीण शूरवीरों को साथ लेकर शत्रु का पराभव करे। तात्पर्य विजय प्राप्त करने के तीन साधन हैं (१) परमेश्वर पर दृढ़ विश्वास, (२) अपने सैनिकों के शस्त्रास्त्रों की उत्तम तैयारी, तथा (३) सैनिकों का उग्र शौर्य ।

वयं जयेम त्वया युजा
वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं
कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥

ऋ. १।१०२।४॥

हे (मघवन्) ऐश्वर्यसंपन्न प्रभो ! (त्वया युजा) तेरे साथ युक्त होकर (वृतं) घेरे हुए शत्रु के ऊपर (वयं जयेम) हम विजय प्राप्त करें, (भरे भरे) युद्ध में (अस्माकं अंशं) हमारे भाग का (उदव) रक्षण कर। हे (इन्द्र) प्रभो ! (अस्मभ्यं) हमारे लिये (वरिवः सुगं कृधि) धन सुगमता से प्राप्त होने वाला कर, (शत्रूणां) शत्रुओं के (वृष्ण्या) बल (प्ररुज) नष्ट-भ्रष्ट कर।

परमेश्वर के साथ रहने वाले सदा विजय प्राप्त करते हैं, प्रत्येक युद्ध में वे विजयी होते हैं। धनादि भोग्य पदार्थ भी उनको सुगमता से प्राप्त होते हैं, उनके शत्रु निर्बल होते जाते हैं।

त्वे इ॒न्द्राप्य॑भूम॒ विप्रा॒ धिय॑
वनेम ऋ॒तया॒ सप॑न्तः ।
अ॒व॒स्यवो॑ धीमहि॒ प्रश॑स्तिं
स॒द्यस्ते॑ रा॒यो दा॒वने॑ स्याम ॥

ऋ. २।११।१२॥

हे (इन्द्र) प्रभो ! हम (विप्राः) ज्ञानी लोग (त्वे अभूम) तेरे अंदर मन स्थिर रख कर रहेंगे और (ऋतया सपन्तः) सीधे मार्ग से व्यवहार करते हुए (धियं वनेम) बुद्धि और कर्म की सिद्धि प्राप्त करें। (अवस्यवः) अपने रक्षण करने वाले हम (प्रशस्तिं धीमहि) तेरा वर्णन तेरे गुण-मन में धारण करें और (सद्यः) तत्काल (ते रायः दावने) तेरे धन के दान के लिये हम योग्य (स्याम) हों।

ज्ञानी लोग ईश्वर में ही दत्तचित्त हों, सीधे मार्ग से व्यवहार करके कर्मसिद्धि प्राप्त करें, अपना रक्षण करते हुए, ईश्वर के गुणों का चिंतन करें और अपने आपको उसकी दया के योग्य बनावें।

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो
देवान्क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां
नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥

ऋ. २।१२।१॥

(यः प्रथमः देवः) जो पहिला देव (जात एव) प्रकट होते ही (मनस्वान्) जनशक्ति से श्रेष्ठ होकर (क्रतुना) अपने पुरुषार्थ से (देवान्) सब सूर्यादि देवों को (पर्यभूषत्) सुशोभित करता रहा (यस्य शुष्माद्) जिसके बल से (रोदसी) द्युलोक और पृथिवी (अभ्यसतां) कांपते हैं हे (जनासः) लोगो ! (नृम्णस्य मह्ना) मानसिक शक्ति के महत्व से युक्त (सः) वह देव (इन्द्रः) इन्द्र अर्थात् प्रभु ही है ।

सबसे पहिला देव जो सब अन्य देवों को तेजस्वी करता है, जिसके बल से सब डरते हैं। जिसकी आत्मिक और मानसिक शक्ति अद्वितीय है वही सब का एक प्रभु है।

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो
यं युद्धयमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव
यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥

ऋ. २।१२।९ ॥ अ. २०।३४।९॥

हे (जनासः) लोगो ! (यस्मात् ऋते) जिसको छोड़कर (जनासः) लोग (न विजयन्ते) विजय को नहीं प्राप्त होते, और (युद्धयमानाः) लड़ने वाले (अवसे) रक्षण के लिये (यं हवंते) जिसकी प्रार्थना करते हैं। और (यः) जो (विश्वस्य प्रतिमानं) विश्व का निर्माता (बभूव) है और जो (अच्युतच्युत्) स्वयं न हिलता हुआ दूसरों को हिलाता है हे (जनासः) लोगो ! (सः इन्द्रः) वह इन्द्र अर्थात् सब जगत् का एक राजा है।

अस्माकमग्ने मघवत्सु
धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम् ।
वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं
वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः ॥

ऋ. ६।८।६॥

हे (वैश्वानर अग्ने) वैश्वानर अग्ने ! हमारे (मघ-वत्सु) धनिकों में (अनामि सुवीर्य अजरं क्षत्रं) उत्तम वीर्ययुक्त अविनाशी क्षात्र तेज (धारय) धारण कर (तव ऊतिभिः) तेरे संरक्षण से हे (अग्ने) प्रभो ! (वयं शतिनं सहस्रिणं वाजं जयेम) हम सब सौ अथवा हजारों सैनिकों के साथ हमला करने वाले शत्रु को भी पराजित करें।

मानव संघ के प्रेम से लड़ने वालों को इस प्रकार बल प्राप्त होना स्वाभाविक ही है। जो अपने राष्ट्रहित के लिये जागते हैं, उनसे ही राष्ट्र की उन्नति होती है।



वर्चस प्रार्थना

++卐++

आयुष्यं वर्चस्यथं रायस्पोषमौद्भिदम् ।
इदथं हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाऽविशतादु माम् ॥

य.:३४।५०॥

(इदं हिरण्यं) यह सुवर्ण आदि धन मेरे लिये (आयुष्यं) दीर्घ आयुष्य देने वाला, (वर्चस्यं) तेज बढ़ाने वाला, (रायः पोषं) राजत्व का पोषण करने वाला, (औद्भिदं) उन्नति देने वाला और (वर्चस्वत्) शान्ति देने वाला होकर (जैत्राय) विजय के लिये (मां) मुझे (विशतात् उ) प्राप्त होवे ही ।

अर्थात् उस धन से ऐसे कर्म करने चाहियें जिससे दीर्घ आयुष्य तेज ऐश्वर्य उन्नति अभ्युदय बल और विजय प्राप्त होता रहे । ऐसे कर्म नहीं करने चाहिये, कि जिनसे आयु आदि न्यून होकर अवनति होजाय ।

जो मनुष्य धनी हैं, उनको योग्य पुरुषार्थ करके दीर्घ आयुष्य, तेजस्विता, पुष्टि, उन्नति, शक्ति और विजय प्राप्त करना चाहिये । यदि धन प्राप्त होने से इन गुणों की न्यूनता हो जाय, तो वह योग्य धन ही नहीं है । इन गुणों की वृद्धि करने वाला ही धन योग्य धन है ।

अश्वावन्तं रथिनं वीरवन्तं
सहस्रिणं शतिनं वाजमिन्द्र ।

भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षामस्मभ्यं
चित्रं वृषणं रयिन्दाः ॥

ऋ. १०।४७।५॥

हे (इन्द्र) प्रभो ! (अश्वावन्तं) घोड़ों से, (रथिनं) रथों से और (वीरवंतं) वीरों से युक्त, (सहस्रिणं शतिनं) सहस्रों प्रकार के (वाजं) बल और अन्न को पास रखनेवाला (भद्रव्रातं) कल्याण-कारक समाज को साथ रखने वाला (विप्रवीरं) विशेष ज्ञानी और वीरों से सदा युक्त (स्वाः सां) सब को स्वीकारने योग्य, (चित्रं रयिं) विलक्षण बलयुक्त धन (अस्मभ्यं दाः) हमें दो।

उक्त प्रकार का धन प्राप्त करना चाहिये।

सनद्वाजं विप्रवीरं तरुत्रं
धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम्।
दस्युहनं पूर्भिदमिन्द्र सत्यमस्मभ्यं
चित्रं वृषणं रयिन्दाः ॥

ऋ. १०।४७।४॥

हे (इन्द्र) प्रभो ! (सनद्वाजं) जिस से धन प्राप्त होता है, (विप्रवीरं) ज्ञानी वीर जिसके साथ होते हैं, (तरुत्रं) जो तारण करने वाला होता है, (धनस्पृतं) धन की पूर्ति करने वाला (शूशुवांसं) बढ़ाने वाला, (सुदक्षं) दक्षता से युक्त, (दस्युहनं) शत्रु का नाश करनेवाला (पूर्भिदं) शत्रु के किलों-दुर्गों का भेदन करनेवाला, (सत्यं) सच्चे (चित्रं वृषणं) विलक्षण बलवान् (रयिं) धन को (अस्मभ्यं दाः) हमें दें।

सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्तमुरुं
गंभीरं पृथुबुध्नमिंद्र ।
श्रुतऋषिमुग्रमभिमातिषाहमस्मभ्यं
चित्रं वृषणं रयिन्दाः ॥

ऋ. १०।४७।३॥

हे (इन्द्र) प्रभो ! (सुब्रह्माणं) उत्तम ज्ञान से युक्त (देववंतं) दिव्य गुणों से युक्त (बृहन्तं) बड़े शक्तिशाली (उरुं गभीरं) बड़े गंभीर (पृथुबुध्नं) विस्तृत आश्रय से युक्त (श्रुत ऋषिं) ऋषियों के ज्ञान का विस्तार करने वाला (उग्रं) उग्रता से युक्त शूरता युक्त (अभिमाति-साहं) शत्रु का पराजय करनेवाले (चित्रं) विलक्षण (वृषणं रयिं) बलवान् धन को (अस्मभ्यं दाः) हमें दो ।

उक्त गुण जिसके साथ रहते हैं, ऐसा ही धन कमाना चाहिये । अर्थात् धन के साथ उक्त गुणों की वृद्धि करनी चाहिये । घोड़े, रथ, वीर, शूर, बलिष्ठ पुरुष, ज्ञानी आदि उस धन के साथ रहें । ऐसा धन न हो, जिस के पास कोई वीर और ज्ञानी न हो । धन के साथ स्वसंरक्षण का तारक गुण हो और आत्मनाश का मारक गुण न रहे । धन के साथ दक्षता बढ़े और शत्रु के नाश करने का पराक्रम वृद्धिगत होजाय । तत्पर्य यह है कि धनी लोग निर्बल और निर्वीर से होते हैं, वैसे न रहें । परंतु धनी स्वयं ऐसे वीर पुरुष बनें कि जो अपने धन की स्वयं रक्षा कर सकें और दूसरों को भी लाभ पहुँचावें ।

संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं
दत्तां वरुणश्च मन्युः ।

भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः
पराजितासो अप निलयन्ताम् ॥

ऋ. १०।८४।७॥

(उभयं) व्यक्ति विषयक और समाज विषयक दोनों प्रकार का (धनं) धन (अस्मभ्यं) हम सब के लिये (सं सृष्टं) उत्पन्न और (सं आकृतं) इकट्ठा करके (मन्युः वरुणः) तेजस्वी श्रेष्ठदेव (दत्तां) देवे। हम सब के (शत्रवः) शत्रु (हृदयेषु) अपने अन्तःकरणों में (भियं दधानाः) भय को धारण करते हुए (पराजितासः) पराजित होकर (अप निलयन्ताम्) भाग जावें।

व्यक्ति के संबंध का एक धन होता है और जाति का=समाज का अथवा राष्ट्र का एक धन होता है, वैयक्तिक धन और सामुदायिक धन इस प्रकार के दो धन हैं। व्यक्ति को वैयक्तिक धन और जाति को जातीय धन कमाना अत्यन्त आवश्यक है। इन दोनों धनों को प्राप्त करने का प्रयत्न हर एक को करना चाहिये। इन दोनों धनों को प्राप्त करने के पुरुषार्थ में ऐसा विलक्षण शौर्य दिखाना चाहिये कि जिससे सब शत्रु भयभीत होकर दूर भाग जावें। इसी से पूर्ण विजय प्राप्त होता है।

वर्च आ धेहि मे तन्वां३सह
ओजो वयो बलम्।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय
प्रति गृह्णामि शतशारदाय ॥

अ० १९।३७।२॥

(मे तन्वां) मेरे शरीर में (वर्चः) तेज, (सहः) शक्ति, (ओजः) पराक्रम, (वयः) पौरुष, (बलं) बल, (आधेहि) धारण कर। (इन्द्रियाय कर्मणे वीर्य्याय) इंद्रिय, कर्म और वीर्य तथा (शत शारदाय) सौ वर्ष की आयु के लिये (त्वा प्रतिगृह्णामि) तेरा स्वीकार करता हूं।

हर एक मनुष्य को अपने शरीर में तेज, शक्ति, स्फूर्ति, पराक्रम, पौरुष, बल आदि धारण करके बढ़ाने चाहियें। इंद्रियशक्ति, पुरुषार्थ, वीर्य और दीर्घ आयुष्य की वृद्धि के लिये प्रयत्न करना चाहिये। इनकी वृद्धि से ही मनुष्य की योग्यता बढ़ जाती है और इनके घटने से मनुष्य की योग्यता घट जाती है। इसलिये जितना शक्य हो, उतना प्रयत्न करके मनुष्य को उक्त शक्तियां अपने अन्दर विकसित करनी चाहिये। वर्चः-शब्द तेजस्विता का बोध कराता है। सहः-शब्द से शत्रुओं को पराजित करने की शक्ति का भाव ज्ञात होता है। ओजः-शब्द शारीरिक शक्ति के पुरुषार्थ करने का भाव बताता है। वयः-का अर्थ पौरुष=प्रयत्न है। बलं-शब्द सब प्रकार से, शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक बलों का बोध कराता है।

मनुष्य की योग्यता (१) इन्द्रियशक्ति, (२) उत्साहमय वीर्यशक्ति, (३) कर्मशक्ति और (४) दीर्घ आयु पर अवलम्बित होती है। इनमें से कोई शक्ति कम हो जाए तो योग्यता कम होजाती है और अधिक होने से योग्यता बढ़ जाती है। इसलिये हर एक मनुष्य को इन की वृद्धि करने के पुरुषार्थ में पराकाष्ठा करनी चाहिये।



शिवसंकल्प मन ।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

य० ३४।१॥

(यत्) जो (जाग्रतः) जागृत अवस्था में (दूरं उदैति) दूर दूर भागता है और (सुप्तस्य) सुप्त अवस्था में भी (तथैव) वैसा ही (एति) जाता है, (तत्) वह (दूरंगमं) दूर दूर पहुंचने वाला (ज्योतिषां ज्योतिः) ज्योतियों का भी ज्योतीरूप=प्रधान इन्द्रिय (एकं) एक मात्र (दैवं मे मनः) दिव्य शक्ति से युक्त मेरा मन (शिव-संकल्पं) शुभ संकल्पमय (अस्तु) होवे ।

मन जागृत, स्वप्न और निद्रा में दूर दूर भागता है और भटकता है, वह किंचित् काल भी स्थिर रहता नहीं है। वह सदा चंचल रहता है। परन्तु उसके अन्दर अद्भुत दैवी बल रहता है। वह मन अत्यंत वेगवान् है और तेजस्वियों का भी प्रकाशक है। इस प्रकार का यह मन शुभ संकल्प युक्त होना चाहिये। अन्यथा इसकी जो अद्भुत शक्ति है, वही मनुष्य के घात का हेतु हो सकती है।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।

यद्पूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

य. ३४।२॥

(येन) जिस मन से (अपसः) पुरुषार्थी (धीराः) बुद्धिमान् (मनीषिणः) मन का संयम करने वाले लोग (यज्ञे) सत्कर्म में (विदथेषु) युद्धादि के स्थानों में भी (कर्माणि कृण्वन्ति) कर्म करते हैं, (यत्) जो मन (प्रजानां अन्तः) प्रजाओं के बीच में (अपूर्वं यक्षं) अपूर्व पूज्य है, (तत् मे मनः) वह मेरा मन (शिवसंकल्पं अस्तु) शुभ संकल्प युक्त होवे।

सब लोक अपने मन के द्वारा ही सब कर्म करते हैं। शांति के समय के कर्म और युद्धादि के अशांति के उद्योग भी उक्त मन द्वारा ही किये जाते हैं, इसलिये सिद्ध होता है कि मन के शुद्ध होने से कर्म शुद्ध होंगे और अशुद्ध होने से कर्म भी अशुद्ध होंगे। यह अपूर्व शक्तिशाली मन प्रजाओं के बीच में अंत करण के स्थान में रहता है। यह मन सदा शुभ संकल्प करे। क्योंकि यदि यह मन शुभ संकल्प करेगा, तभी यह उत्तम निर्दोष कर्म कर सकता है, अन्यथा यही दोषयुक्त कर्म करके मनुष्य को भी दोषी बनायेगा। अतः मन को शिव संकल्प युक्त बनाना आवश्यक है।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च
यज्ज्योतिरंतरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

य० ३४।३॥

(यत्) जो मेरा मन (प्रज्ञानं) ज्ञान (उत) तथा (चेतः) चिंतन शक्ति (च) और (धृतिः) धैर्यसे युक्त है तथा जो (प्रजासु अंतः) प्रजाओं में (अमृतं) अमृतरूप और (ज्योतिः) तेजोरूप है, (यस्मात् ऋते) जिस मन के विना (किंचन कर्म) कोई भी कर्म (न क्रियते) किया नहीं जाता, (तत् मे मनः शिवसंकल्पं अस्तु) वह मेरा मन शुभ विचार करने वाला होवे।

मन के अन्दर ज्ञान शक्ति, चिंतन शक्ति और धैर्य शक्ति रहती है, और यह मन प्रजाओं में अमृतमय और तेजोमय है। यह इतना शक्ति-शाली है कि इसके विना मनुष्य कोई भी कर्म कर नहीं सकता। सब कार्य्य इसकी सहायता से किये जाते हैं। इसलिये इसको शुभ संकल्पमय बनाना चाहिये।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परि-
गृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

य० ३४।४॥

(येन अमृतेन) जिस अमर मन ने (इदं भूतं भविष्यत् भुवनं) यह भूत भविष्य वर्तमान (सर्वं) सब कुछ (परि गृहीतं) स्वीकृत किया है, जान लिया है, (येन) जिस मन द्वारा (सप्तहोता यज्ञः) सात ऋत्विजों द्वारा होने वाला यज्ञ (तायते) फैलाया जाता है, (तत् मे मनः शिवसंकल्पं अस्तु) वह मेरा मन शुभ संकल्प-युक्त होवे।

भूत भविष्य वर्तमान काल में जो कुछ बनता है, वह मन द्वारा ही ग्रहण किया जाता है। अर्थात् मन द्वारा वह घेरा जाता है, तात्पर्य मन की शक्ति उससे बढ़कर है। पञ्च ज्ञानेंद्रिय और अहंकार तथा बुद्धि द्वारा जो यह जीवन यज्ञ चलाया जा रहा है, वह मन के अधिष्ठातृत्व में ही चल रहा है। इस प्रकार जो मन सब कार्यकारी इन्द्रियगण का मुख्याधिष्ठाता है, वह मन सदा शुभ संकल्प करने वाला बने और कदापि अशुभ संकल्प न करे।

यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन्प्र-
तिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

य० ३४।५॥

(यस्मिन्) जिस मन में (ऋचः) ऋचाएं=वेदका पद्यभाग और (यस्मिन् साम यजूंषि) जिसमें साम-वेद का गीति भाग तथा यजुः=गद्य भाग तात्पर्य सब वेद (रथनाभौ आराः इव) रथनाभि में आरों के समान (प्रतिष्ठिताः) स्थिर हो गये हैं, (प्रजानां सर्वं चित्तं) सब प्रजाओं का चित्त (यस्मिन्) जिसमें (ओतं) ओतप्रोत भरा है, (तत् मे मनः शिवसंकल्पं अस्तु) वह मेरा मन शिव संकल्प होवे।

मन के अन्दर सम्पूर्ण वेद और सब शास्त्र तथा अन्य सब ज्ञान ओत प्रोत भरा रहता है, अर्थात् ज्ञानी के मन में यह सब ज्ञान रहता है। मन की शक्ति ऐसी है कि जिसमें यह सब ज्ञान रह सके। सब प्राज्ञ लोग इसी से मनन करते है। इस प्रकार का यह शक्तिशाली मन सदा शुभ विचार से युक्त होवे।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्ने-
नीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे
मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

य० ३४।६॥

(इव) जिस प्रकार (सु सारथिः) उत्तम सारथि (अश्वान्) घोड़ों को चलाता है, (इव) उस प्रकार (यत्) जो (मनुष्यान्) मनुष्यों के इन्द्रियरूपी (वाजिनः) अश्वोंको (अभीशुभिः) लगामों द्वारा (नेनीयते) चलाता है और (यत्) जो (हृत्प्रतिष्ठं) हृदय में रहता हुआ, (अजिरं) अजर और (जविष्ठं) वेगवान् है, (तत् मे मनः शिवसंकल्पं अस्तु) वह मेरा मन उत्तम शुभ संकल्प युक्त होवे ।

रथ का सारथी जिस प्रकार घोड़ों को चलाता है, उसी प्रकार यह मन इन्द्रियों को चलाता है । इसीलिये इसका संकल्प शुभ होना चाहिये । नहीं तो यह इन्द्रियों को किसी गढ़े में गिरा देगा । यह मन हृदय में रहता हुआ अनन्त गति के साथ चलता है । इस प्रकार का शक्तिशाली मन सदा शुभ संकल्प से युक्त होवे । मनुष्यों को उचित है कि वे इस उपदेश के अनुसार अपने मन को शुभ संकल्प बनावें और अपनी उन्नति सिद्ध करें ।



धारणावती बुद्धि

मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं
ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम् ।
प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे ॥२॥

अ० ६।१०८॥

(अहं) मैं (ब्रह्मण्वतीं) ज्ञानयुक्त (ब्रह्मजूतां) ज्ञानियों द्वारा सेवित (ऋषि-स्तुतां) ऋषियों से स्तुति की गई (ब्रह्मचारिभिः प्रपीतां) ब्रह्मचारियों से पान की गई (प्रथमां) विशाल (मेधां) धारणायुक्त बुद्धि को (देवानां अवसे) देवों-इन्द्रियों और ज्ञानियों-की रक्षा के लिये (हुवे) प्राप्त करता हूं ।

जिस प्रकार की धारणावती बुद्धि की प्रशंसा सब विद्वान् कर रहे हैं, उसकी धारणा की उन्नति अपने अन्दर करनी चाहिये। धारणावती बुद्धि को मेधा कहते हैं। जिससे मन के अन्दर ज्ञानादि की धारणा होती है, उस शक्ति का नाम मेधा है। यह मेधा शक्ति जितनी प्रबल होगी उतनी बुद्धि की विशालता मनुष्य दिखा सकता है। इसलिये हर एक मनुष्य को उचित है, कि वह अपने अन्दर इस धारणावती बुद्धि को बढ़ावे।

यां मेधामृभवो विदुर्यां मेधामसुरा विदुः ।
ऋषयो भद्रां मेधां यां

विदुस्तां मय्यावेशयामसि ॥ ३ ॥

अ० ६।१०८।

(यां मेधां) जिस मेधा को (ऋभवः विदुः) ज्ञानी जानते हैं, (यां) जिस (मेधां) बुद्धि को (असु–राः) प्राणविद्या निष्णात (विदुः) जानते हैं, अथवा प्राप्त करते हैं और (यां) जिस (भद्रां) कल्याणमयी (मेधां) बुद्धि को (ऋषयः) ऋषि (विदुः) जानते हैं, (तां मयिआवेशामसि) उस श्रेष्ठ बुद्धि को अपने अन्दर स्थापित करता हूं।

सब ज्ञानी जिस धारणावती बुद्धि का अनुभव करते हैं, वह हरएक को प्राप्त करनी चाहिये।

यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु ॥ ४ ॥

अ० ६।१०८।।

हे (अग्ने) अग्ने ! (यां मेधां) जिस मेधा बुद्धि को (मेधाविनः भूत-कृतः) ज्ञानी और पुरुषार्थी (ऋषयः) ऋषि (विदुः) अनुभव करते रहे, हे (अग्ने) प्रभो ! (तया मेधया) उस मेधा बुद्धि से (मेधा विनं) बुद्धिमान् (मां कृणु) मुझे कर।

मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यंदिनं परि।
मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे ॥५॥

अ० ६।१०८।।

(सायं) सायंकाल, (प्रातः) प्रातःकाल और (मध्यं दिनं) दिन के मध्य में (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य के किरणों के साथ तथा (वचसा) अपनी वाक् शक्ति के साथ (मेधां) मेधा नामक धारणावती बुद्धि को (वेशयामहे) धारण करते हैं।

मेधा बुद्धि की वृद्धि के लिये हरएक को प्रतिदिन सुबह शाम प्रयत्न करना चाहिये। दक्षता से प्रयत्न करने पर ही इसकी वृद्धि होती है।

इंद्रियों की शांति

++卐++ ++卐++

इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता।
ययैव ससृजे घोरं तयैव शांतिरस्तु नः॥

अ० १६।६।३॥

(या इयं) जो यह (ब्रह्म-संशिता) ज्ञान से तीक्ष्ण बनी हुई (परमेष्ठिनी वाग्देवी) परमात्मा में सम्बन्ध रखनेवाली वाग्देवी है, (यया) जिससे (घोरं ससृजे) भयंकर प्रसङ्ग उत्पन्न होता है, (तया एव) उसीसे (नः शांतिः अस्तु) हमें शांति प्राप्त होवे।

वाणी आत्मा की प्रेरणा से उत्पन्न होती है, इस वाणी के दुरुपयोग से अनन्त झगड़े खड़े होते हैं, और सदुपयोग से अनन्त उपकार भी होते हैं। इसलिये वाणी के सदुपयोग द्वारा हमें उत्तम शान्ति प्राप्त हो, यह प्रार्थना इस मन्त्र में है, जो सूचित करती है कि, हरएक मनुष्य वाणी का सदुपयोग करके शांति स्थापन करने में अपने से जो हो सकता है, करे।

इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम् ।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शांतिरस्तु नः ॥

अ० १६।६।४॥

(इदं) जो (ब्रह्मसंशितं) ज्ञान से तीक्ष्ण बना हुआ (परमेष्ठिनं) परमात्मा से सम्बन्ध रखनेवाला (मनः) मन है, (येन एव) जिससे (घोरं··) भयंकर परिणाम होता है, उसीसे हमें शान्ति प्राप्त हो ।

हमारे अन्दर मन है, जो आत्मा की शक्ति से यहां कार्य कर रहा है । इस मन के दुरुपयोग से बड़े भयानक दुष्परिणाम होते हैं, परन्तु यदि वह मन अपने वश में रहा, तो अत्यन्त उन्नति प्राप्त होती है । इसलिये मन से कदापि बुरे विचार करने नहीं चाहिये, परन्तु अच्छे पोषक विचार करके श्रेष्ठ बनने का ही यत्न हरएक को करना चाहिये ।

इमानि यानि पंचेंद्रियाणि मनः
षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि ।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शांतिरस्तु नः ॥

अ० १६।६।५॥

(इमानि) ये (पञ्च-इन्द्रियाणि) पांच ज्ञानेन्द्रियां (मनः षष्ठानि) जिनमें मन छठवां है, (ब्रह्म-संशितानि) ज्ञान से सुतीक्ष्ण बनकर मेरे हृदय में रहते हैं, (यैः एव) जिनसे (घोर······) भयंकर परिणाम भी होता है, उनसे भी हमें शांति प्राप्त होवे ।

मन और इंद्रियां यदि बिगड़ बैठें, तो मनुष्य को कितनी आपत्ति में डालती है, यह बात प्रसिद्ध है । परन्तु वश में रहें, तो

उनसे बहुत उन्नति होती है। इसलिये उनको वश में रखकर उनके उत्तम उपयोग द्वारा ही शांति स्थापित करनी चाहिये।

बलवती वाणी

निर्दुरर्मण्य ऊर्जा मधुमती वाक्॥

अ. १६।२।१॥

(ऊर्जा) शक्ति वाली, (मधुमती) मीठी (वाक्) वाणी (निः दुरर्मण्यः) दुष्टभाव से युक्त न हो।

वाणी में बड़ी शक्ति है, इसलिये उस वाणी का प्रयोग कदापि बुरे भाव के साथ नहीं करना चाहिये। कई लोग मीठे शब्द बोलते हैं, परन्तु उनका भाव बड़ा कडुआ होता है। इस प्रकार बर्ताव कदापि कोई भी न करे।

मीठी वाणी

मधुमती स्थ मधुमतीं वाचमुदेयम्॥

अ १६।२।२॥

प्रजाजनो ! तुम (मधुमती स्थ) मीठे स्वभाव से युक्त हो, मैं (मधुमतीं वाचं) मीठा भाषण (उदेयम्) बोलूं ।

सम्पूर्ण प्रजाजनों के साथ मीठा भाषण करना उचित है, क्योंकि उसी से अहिंसामय शांति सर्वत्र स्थापित होकर मीठे व्यवहार से ही जगत् वश में आ सकता है ।

कल्याण का उपदेश सुननेवाले कान

सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ
भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ॥

अ. १६।२।४॥

मेरे (कर्णौ) कान (सुश्रुतौ) उत्तम उपदेश श्रवण करनेवाले हैं, मेरे (कर्णौ) कान (भद्रश्रुतौ) कल्याण की बात सुननेवाले हैं। इस लिये मैं (भद्रं श्लोकं) कल्याणमय यश के विषय में उपदेश (श्रूयासं) सुनू।

कानों से ऐसा उपदेश श्रवण करना चाहिये, कि जिससे अपना सदैव कल्याण हो, अपना यश बढ़े ।

तीक्ष्ण दृष्टि



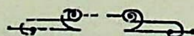
सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा
हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ॥

अ. १६।२।५॥

(सुश्रुतिः) उत्तम बात श्रवण करना और (उपश्रुतिः) उसका अंगीकार करना, ये दो गुण (मा) मुझे (मा हासिष्टां) न छोड़ें, (सौपर्णं चक्षुः) गरुड़ के समान तीक्ष्ण दृष्टि मेरी होवे, और (अजस्रं ज्योतिः) सतत तेजस्विता मुझ में वास करे।

उत्तम उपदेश सुनना, उत्तम उपदेश के अनुसार अपना आचरण करना, सूक्ष्म दृष्टि का उदय, और तेजस्विता ये चार गुण मनुष्य को अपने अन्दर बढ़ाने चाहियें।

ऋषियों का प्रचारक



ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु
दैवाय प्रस्तराय ॥

अ. १६।२।६॥

तू (ऋषीणां) ऋषियों का (प्रस्तरः) प्रसारक है । तुभ्य (दैवाय प्रस्तराय) दिव्य प्रचारक के लिये (नमः अस्तु) नमस्कार हो ।

ऋषियों के दिव्य ज्ञान का प्रचारक ऋषि संतान हैं । जो दिव्य ज्ञान का श्रेष्ठ प्रचारक होगा, उसका सत्कार करना उचित है ।

शांत हृदय

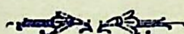
असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः
समुद्रो अस्मि विधर्मणा ॥

अ. १६।३।६॥

(मे हृदयं) मेरा हृदय (असंतापं) संताप रहित होवे । (गव्-यूतिः) इंद्रियों की गति (उर्वी) बड़ी हो । (विधर्मणा) विविध धर्म नियमों के पालन करने के कारण मैं (सम्-उत्-द्रः अस्मि) सम्यक् रीति से उत्कर्ष के लिये गति उत्पन्न करने वाला बनूं । अथवा समुद्र के समान गंभीर बनूं ।

हृदय में शांति रखनी चाहिये । इंद्रियों और अवयवों का बल बढ़ाना चाहिये और उन्नति प्राप्त करने के लिये सदा प्रयत्न करना चाहिये ।

समान लोगों में श्रेष्ठ



मूर्धाऽहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥
अ. १६।३।१॥

(अहं) मैं (रयीणां मूर्धा) धनों का सिर और (समानानां मूर्धा) समान विद्वानों में सिर स्थानीय (भूयासं) हो जाऊं।

हरएक मनुष्य को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि जिससे उनके पास बहुत धन संग्रह हो सके और ज्ञान भी ऐसा हो कि जिससे उसकी योग्यता विद्वानों में भी उच्च बन जाय।

विद्या और धन का एकत्र निवास होना इष्ट है। सरस्वती और लक्ष्मी एकत्र रहें, इसी से मनुष्य की उन्नति होगी।

धनों का केन्द्र



नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् ॥
अ. १६।४।१॥

(अहं) मैं (रयीणां नाभिः) धनों का केंद्र और (समानानां) समान लोगों का (नाभिः) मध्य (भूयासं) होजाऊं।

अपने चारों ओर धन धान्य हों, और समान विचार वाले लोग भी चारों ओर रहें, तथा मैं उक्त प्रकार सब का केंद्र बन कर रहूं, यह इच्छा हर एक मनुष्य को मन में धारण करनी चाहिये।

मर्त्यों में अमर

स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा ॥

अ. १६।४।२॥

तू (सु—आसत्) उत्तम अवस्था से युक्त, (सूषाः) उत्तम उषा-कालों से युक्त और (मर्त्येषु आ अमृतः) मर्त्यों में सर्वथा अमर (असि) है।

(१) अपनी अवस्था उत्तम करनी चाहिए, (२) प्रातःकाल उठ कर उषा-काल के पूर्व अपना कार्य करने को सिद्ध होने का नाम उत्तम-उषःकाल-वाला होना है, (३) तथा मरने वालों में अमर भाव अर्थात् मनुष्यों में दैवी शक्ति से युक्त मन प्रकाशित रखना चाहिये।

स्थिर प्राण और अपान

मा मां प्राणो हासीन्मो

अपानोऽवहाय परा गात् ।

अ. १६।४।३॥

(प्राणः) प्राण (मां) मुझे (मा हासीत्) न छोड़े और (अपानः उ) अपान भी मुझे (अवहाय) छोड़ कर न (परा गात्) दूर न जावे।

प्राण और अपान मेरे अंदर उत्तम बलवान् बन कर रहें।

आज ही विजय करेंगे

अजैष्माद्यासनामाद्याभूमानागसो वयम् ।

अ. १६।६।१॥

(अद्य अजैष्म) आज हमने जीत लिया है, (अद्य) आज हमने (असनाम) धन प्राप्त किया है। (वयं) हम (अनागसः) पाप रहित (अभूम) हो गये हैं।

(१) विजय प्राप्त करना, (२) धनादि भोग प्राप्त करना और (३) निष्पाप बनना चाहिये। हर एक मनुष्य के ये उद्देश्य होने चाहिये। इन उद्देश्यों के अनुकूल हर एक को प्रयत्न करना चाहिये।

मन आदि संपूर्ण शक्तियों की पूर्व उपदेशानुसार उन्नति करने से ही अपना विजय होगा। इसलिये अपनी सर्वांगीण उन्नति करने

के लिये हर एक को परम पुरुषार्थ करना चाहिये । इस विषय में निम्न लिखित सूक्त देखिये—

अपने उदय का क्रम



वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्च-
क्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः ।
अपलिताः केशा अशोणा
दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥ १ ॥
ऊर्वोरोजो जंघयोर्जवः पादयोः ।
प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मा निभृष्टः ॥ २ ॥
तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय ।
स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ॥१॥
प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ १ ॥
उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं
यजमानं च वर्धय ॥ २ ॥

अथर्व० कां० १९ सू० ६०,६१,६२,६३ ॥

(मे) मेरे (आसन) मुख में पूर्ण आयु की समाप्ति तक (वाक्) उत्तम वक्तृत्वशक्ति रहे, (नसोः प्राणः) नासिका में प्राण-शक्ति संचार करती रहे, (अक्ष्णोः चक्षुः) आंखों में दृष्टि उत्तम प्रकार से रहे, (कर्णयोः श्रोत्रम्) कानों में श्रवण शक्ति रहे, (अ-पलिताः केशाः) मेरे बाल सफेद न हों, (अ-शोणाः दन्ताः) मेरे दांत मलीन न हों, मेरे (बाह्वोः बहुः बलं) बाहुओं में बहुत बल रहे, मेरी (उर्वोः) उरुओं में (ओजः) शक्ति रहे, (जंघयोः) जांघों में (जवः) वेग रहे, (पादयोः) पाओं के अन्दर (प्रतिष्ठा) स्थिरता और दृढ़ता रहे, (मे सर्वा) मेरे सब अवयव (अरिष्टानि) हृष्ट पुष्ट हों, मेरा (आत्मा) आत्मा सदा (मृष्टः) उत्साह पूर्ण रहे, (मे तनूः) मेरे शरीर के सब अवयव (तन्वा) उत्तम अवस्था में रहें। (दतः) दबानेवाले शत्रु को (सहे) सहन करने की शक्ति मेरे अन्दर रहे। मैं (सर्व आयुः) पूर्ण दीर्घ आयु (अशीय) प्राप्त करूं। पूर्ण आयु की समाप्ति तक मेरे सब अवयव हृष्ट पुष्ट रहें, (मे) मुझे (स्योनं) सुख (सीद) प्राप्त हो, (पुरुः पृणस्व) बहुत पूर्णत्व प्राप्त हो, मैं (पवमानः) शुद्ध होकर (स्वर्गे) स्वर्ग में—अर्थात् उत्तम लोक में—प्रसन्न रहूंगा।

हे प्रभो ! (मा देवेषु प्रियं कृणु) मुझे ब्राह्मणों का प्यारा बनाओ (राजसु मा प्रियं कृणु) क्षत्रिय समुदाय में मुझे प्रियता प्राप्त कराओ (उत शूद्रे) और शूद्र समाज में (उत अर्ये) तथा वणिग्वर्ग में प्यारा बनूं, इतना ही नहीं अपितु (सर्वस्य पश्यतः प्रियं) सब देखनेवाले=प्राणीमात्र का मुझे प्रिय कीजिए।

हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञान के स्वामिन् (उत्तिष्ठ) हमारी उन्नति कर। और (यज्ञेन) सत्कर्म के द्वारा (देवान् बोधय) विद्वानों में जागृति

उत्पन्न कर। तथा (आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं च यजमानं) आयु, जीवन, संतति, पशुपालन कीर्ति तथा सत्कर्म करनेवालों का (वर्धय) बल बढ़ाओ।

इन सूक्तों के मंत्रों में मनुष्य के अभ्युदय का स्वरूप उत्तम रीति से वर्णन किया है, (१) प्रथमतः अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियों की उन्नति करनी चाहिये। जिसका शरीर कमजोर है, मन निर्बल है और बुद्धि क्षीण है, वह परोपकार के पुरुषार्थ भी उत्तमता से कर नहीं सकता। इसलिये वैयक्तिक उन्नति का प्रयत्न सब से प्रथम होना चाहिये। (२) तत्पश्चात् दीर्घ आयुष्य प्राप्त करने के लिये मानसिक और आत्मिक समता प्राप्त करनी चाहिये। इस समता से ही मनुष्य जनता के उपयोगी महत्कार्य करने योग्य बनता है। समता का भाव मन में स्थिर न रहा, तो वह मनुष्य सार्वजनिक कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। मानसिक समता और स्थिरता शारीरिक आरोग्य और दीर्घ आयुष्य भी प्राप्त होता है। अल्पायु मनुष्य तथा अस्थिर चित्त का मनुष्य जनता के हित के काम कैसे कर सकता है ? चालीस पचास वर्ष तक मनुष्य अनुभव प्राप्त करता है, और पश्चात् की आयु में वह अनुभव लोगों को देता है। जो मनुष्य अल्पायु होता है, वह अनुभव प्राप्त करने की आयु में ही मरता है, इसलिये उस से कोई विशेष कार्य जनता के लाभ के लिये होना अशक्य है। अतः पुरुषार्थी मनुष्य को उचित है, कि वह शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति के साथ अपनी दीर्घ आयु बनाने का यत्न करे। (३) इतनी योग्यता के पश्चात् वह जनता के हित के कार्य कर सकता है और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के उपयोगी महत्कार्य करके उनकी प्रीति संपादन कर सकता है। तात्पर्य

सर्वजन हितकारी पुरुषार्थ करने से सब जनता उस पर प्रेम करती है, और वह लोकप्रिय बन जाता है। (४) इस समय उसका कार्य केवल जनता को संतुष्ट करना ही नहीं होता प्रत्युत जनता को योग्य कर्तव्य बताने के लिये उसे उत्तम बोध भी प्राप्त करना होता है।

अस्तु, इस प्रकार मनुष्य की क्रमशः उन्नति होती है। यह मानवी उदय के स्वरूप का उपदेश इन सूक्तों का विचार करने से पाठकों को प्राप्त हो सकता है।

शुभ कर्म करने की प्रतिज्ञा

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभि-
र्व्यशेम देवहितं यदायुः॥

ऋ० १।८९।८॥

(कर्णेभिः) कानों से (भद्रं शृणुयाम) कल्याणमय उपदेश ही सुनें, (अक्षभिः) आंखों से (भद्रं पश्येम) कल्याणकारक दृश्य ही देखें। हे (यजत्राः देवाः) याजक विद्वान् लोगो! (स्थिरैः अंगैः स्थिर अङ्गों से युक्त (तनूभिः) शरीर से (तुष्टुवांसः) ईश्वर की प्रशंसा करते हुए (देवहितं आयुः) देवों के हित करने के लिये अपनी आयु (व्यशेम) प्राप्त करें।

शरीर के संपूर्ण अवयवों से श्रेष्ठों की सेवा और उनका सत्कार करते हुए तथा संपूर्ण श्रेष्ठ कर्तव्यों को पूर्ण करते हुए, हम पूर्ण आयु प्राप्त करें। इस मंत्र में यद्यपि कान और आंखों का ही उल्लेख है, तथापि सब अन्य अवयवों के विषय में इसी प्रकार निश्चय करना चाहिये। अर्थात् अपने हर एक अवयव से शुभ कर्म करने की प्रतिज्ञा इस समय करनी चाहिये और दक्षता के साथ व्यवहार करके उक्त प्रतिज्ञा की पूर्णता करनी चाहिये। अपने शरीर के हर अवयव से इस प्रकार शुद्ध कर्म करने की दक्षता जो बनायेंगे; वे ही उन्नत हो सकते हैं।

मनुष्य शरीर की कृतकृत्यता उक्त प्रकार कर्म करने ही हो सकती है। प्रत्येक अवयव को शुभ कर्म में प्रवृत्त करने से उन्नति और अशुभ कर्म में प्रवृत्त करने से अवनति होती है, यह नियम ध्यान में रखने से मनुष्य की सदा उन्नति ही होती रहेगी।





आर्यसमाज के नियम



१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदिमूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्त्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ॥